

॥ अहम् ॥

॥ विजयप्रशस्तिसार ॥

कर्ता

आचार्योपासकः-मुनि विद्याविजय ।

लखनऊ निवासी बाबू दीपचन्द्रजी सुन्दरलालजी, श्रीमाल
की सहायता से शाह-हर्षचन्द्र भूराभाई सम्पादक
'जैनशासन' ने प्रकाशित किया ।

वीर सं० २४३६

सन्-१९१२

श्रीदामोदर प्रेस लखनऊ में एस्. एन. शर्मा द्वारा मुद्रित ।

अर्द्धम

समर्पण

परोपकार परायणा, धर्मधुरंधर, शासन रक्षक,
पूज्यपाद प्रातः स्मरणीय, श्रीगुरु वर्य्य समीपेषु !
गुरु देव !

परमात्मा वीरके शासनकी उन्नति के लिये, जैन साहित्य के
प्रचारके लिये, आप श्रीमान् का अविश्रान्त उद्योग और
प्रशंसनीय प्रयत्न सर्वसाधारण पर विदित है किसी से
छिपा नहीं है । 'सर्वी जीव करुं शासनरसी' इसलो-
कोक्तिको आपने चरितार्थ ही कर दिया है ।
इतना ही नहीं ? मेरे जैसे पापों के उद्धारके
लिये जिस २ भांति से-जिस २ प्रकार से
आपश्रीने अनुग्रह किया है, वह सर्वथा
अनिर्वचनीय है । इन उपकारों से अनुगृ-
हीत होता हुआ इस छोटीसी पुस्तक
को आप की सेवा में आदर पूर्वक
समर्पण करता हूँ ।

सब प्रकार से आपका
विद्याविजय





शास्त्र विशारद-जैनाचार्य श्री विजय धर्म सूरि महाराज ।

॥ अर्हम् ॥

श्रीमद्विजयधर्मसूरिभ्योनमः ।

* उपोद्घात *

इस बात के कहने की आवश्यकता नहीं है कि-आत्महित और परहित साधन करने वाले शुद्धचरित्रवान् महापुरुषों के जीवनचरित्र के अध्ययन से मनुष्यजाति को जितना लाभ हुआ है और हो सकता है, उतना किसी अन्य साधन से नहीं होसकता ।

जीवनचरित्र मोहान्धकार में पड़े हुए लोगों को ज्ञान प्रकाश में लाने वाली एक अपूर्व वस्तु है । जीवनचरित्र आन्तरिक सद्गुण रूप स्वच्छता और दुर्गणरूप मलीनता दिखाने वाला अद्भुत दर्पण हैं । संसार में जितने शिष्ट पुरुष हुए हैं, सबने अपने सामने किसी आदर्श पुरुष का जीवन चरित्र ही रख कर उन्नति के मार्ग में प्रवेश किया है । यह बात स्वाभाविक और अनिवार्य है ! बिना किसी आदर्श के मनुष्य कुछ कर नहीं सकता । मनुष्य का आचरण आदर्श के अनुसार ही होता है । ऐसे अवसर में महा पुरुषों की जीवनी सर्व साधारण मनुष्यों के चरित्र सुधारने में कहाँ तक उपयोगी होसकती है ? इस बात को सहृदय पाठक स्वयं अनुभव कर सकते हैं ।

इस पुस्तक में वर्णित चरित्र नायकों के आचरण से मनुष्यमात्र असीम लाभ उठा सकते हैं । यह सब के मननयोग्य रहस्य है । मुख्य तथा जगद्गुरु श्रीहीरविजयसूरि, श्रीविजयसेनसूरि तथा श्रीविजयदेवसूरि-इन तीन महात्माओं के पवित्र चरित्रों से यह ग्रंथ गुंफित है । ये महात्मा विक्रमीय सोलहवीं और सतरहवीं शताब्दियाँ में हुए हैं । बालपन में विरक्त होकर दीक्षा के उपरान्त हमारे तीनों चरित्र नायकों ने शासन उन्नति के लिये कितना घोर प्रयत्न किया था-उनका शासन

उपोद्घात ।

प्रेम कितना दृढ़ और प्रगाढ़ था—सम्राट् अकबर जैसे नरपालों को प्रति-
बोध करने में कितने साहस और उत्कर्ष का उन महानुभावों ने परि-
चय दिया था, एवं उस यवनराज्यत्वकाल में स्वधर्मरक्षा के लिए यह
लोग कैसे उद्यत थे यह सब बातें सूक्ष्मतया इस ग्रन्थ में निगदित है ।
सुतरां यह भी ज्ञात होगा कि—वे महानुभाव ऐसे धुरंधर आचार्य होने
पर भी तप-जप-संयम-त्याग वैराग्य में कैसे सुदृढ़ थे ? । पुनः इस
पुस्तक के अवलोकन से ऐतिहासिक विषय के भी बहुत संदिग्ध
रहस्यों का पता लग सकेगा ।

इस पुस्तक को मैंने ‘ भीविजयप्रशस्ति ’ नामक महाकाव्य के
आधार पर निर्मित किया है । और कतिपय अन्य पुस्तकों से भी सहा-
यता ली है । तिस पर भी यदि किसी अशुद्धि को कोई पाठक सप्र-
माण सूचित करेंगे तो मैं द्वितीयावृत्ति में उसे सहर्ष सुधारने की चेष्टा
करूंगा ।

इस ग्रंथ के निर्माण करने में मेरे सुयोग्य ज्येष्ठ बन्धु, न्याय शास्त्र
के धुरंधर विद्वान् महाराज भीवल्लभविजय जीने बहुत सहायता
प्रदानकी है अतएव मैं आपका अनुगृहीत हूँ ।

यद्यपि मेरी मातृभाषा गुजराती है, तथापि इस पुस्तक को मैंने
हिन्दी में लिखने का साहस किया है । अत एव इसमें भाषा संबन्धी
अशुद्धियाँ का बाहुल्य होना सम्भव है । आशा है कि पाठकवृन्द उन
अशुद्धियाँ की ओर दृष्टिपात न करके पुस्तक के सारही को ग्रहण
करेंगे ।

कार्तिकी पूर्णिमा
बीर सम्बत् २४३६
ता० २४-११-१२

कर्ता

अर्हम्
श्रीमद्विजयधर्मसूरिभ्यो नमः
‘ विजयप्रशस्तिसार ’

* पहला प्रकरण *

(विजयसेन सूरिका जन्म और ‘ कमा ’ श्रेष्ठ की दीक्षा)

जिस समय मेदपाट (मेवाड़) देश, कर्णाट—लाट—विराट—घन-घाट—सौराष्ट्र—महाराष्ट्र—गौड़—चौड़—चीन—वत्स—मत्स्य—कच्छ—काशी—कोशल—कुरु—अंग—वंग—अंग और मरु आदि देशों में सबसे बड़ कर प्रधान गिना जाता था, जिस समय उसकी भूमि रस पूर्ण थी, जिस समय उस देश के समस्त लोग ऋद्धि समृद्धि से कुबेरकी स्पर्द्धा कर रहे थे और जिस समय वहाँ के निवासी (रंक से लेकर राय पर्यन्त) नीति-धर्म का सम्यक्प्रकार से पालन कर रहे थे, उस समय, एकरोज आकाश में भ्रमण करते हुए और नानाप्रकार की भूमि को देखने की इच्छा से ‘ नारद ’ मुनि इस मेदपाट (मेवाड़) देश में आए। इस देश की उन्नति और स्वाभाविक सरलता से आप अधिक प्रसन्न हुए और आपने इस विशाल प्रदेश में कुछ काल तक निवास भी किया। क्योंकि वहाँ आपके नाम से एक नगर बस गया जिसका नाम ‘ नारद पुरी ’ पड़ा।

इस अलौकिक नारद पुरी का यथार्थ वर्णन होना कठिन है। क्या यह लेखनी इस कार्य को अच्छी तरह कर सकती है ? कभी नहीं।

इस नारद पुरी के पास एक पर्वत के शिखर पर भी प्रद्युम्नकुमार ने श्रीनेमीनाथ भगवान् का एक चैत्य (मन्दिर) बनवाया । और उन्होंने इस मन्दिर में बहुत ही मनोहर और नेत्रों को आनन्द देनेवाली श्रीनेमीनाथ भगवान् की प्रतिमा स्थापित की । प्रद्युम्नकुमार इस भगवान् के ध्यान को अपने अन्तःकरण से दूर नहीं करते थे और अहर्निशि धर्म भावना में समय का सदुपयोग करते थे ।

इस नारद पुरी में एक ' कमा ' नाम के शेर रहते थे । उनकी ' कोडीमदेवी ' नामकी एक धर्मपत्नी थी । इन दोनों की देव में देवबुद्धि, गुरु में गुरुबुद्धि और धर्म पर भी पूर्ण भ्रष्टाशी । अर्थात् यह दोनों सम्यक्त युक्त थे । क्योंकि श्रीहेमचन्द्राचार्य प्रभु कहते हैं कि:—

या देवे देवता बुद्धिं गुरौ च गुरुतामतिः ।

धर्मे च धर्मधिः शुद्धा सम्यक्त्वमिदमुच्यते ॥१॥

इन दोनों की श्रीजिनेश्वर में परम भक्ति और साधुजनों में परम प्रीति थी । मन, वचन, कायासे यह दोनों धर्म प्रचार के विर रूपही हो रहे थे । औदार्य, शौर्य गाँभिर्यादि उत्तमोत्तम गुण तो मानो इनके दास होकर रहते थे । इस दम्पती के पुत्र सुखका सौभाग्य नहीं प्राप्त था और इस कारण यह बड़े दुःखी रहते थे । किन्तु दोनों मोक्ष के अभिलाषी होने से अपने द्रव्य को*सात क्षेत्रों में खर्चते थे और क्लृप्त कर्मों को क्षय करने वाले तपमें लवलीन रहते थे । और यह दोनों सर्वदा बड़ी भ्रष्टा पूर्वक पञ्चपरमेष्ठी मंत्र का ध्यान करते थे ।

एक समय की बात है कि कोडीम देवी नित्य नियमानुसार एक रोज पञ्चपरमेष्ठी का ध्यान करती हुई निद्रा के आधीन हो गई । इस देवी ने रात्रि में एक स्वप्न देखा । क्या देखती है कि

* साधु, साध्वी, भावक, श्राविका, जिनभवन, बिम्ब और ज्ञान

एक बड़ा भारी सिंह, सामने खड़ा है जो कि हस्तिओं के त्रास का निदान भूत गर्जना को करता है, जिसका रंग सर्वदा सफेद है। जिसने अपना मुँह निकास दिया है। जिसका बड़ा भारी पूँछ गोलाकार हुआ है। इस प्रकार के स्वप्न को सम्बन्धप्रकार से देखती हुई आनन्द से भरी हुई कोडीम देवीने निद्रा को त्यागा। प्रातःकाल उठ कर उसने अपने पति को नमस्कार करके रात्रिमें देखा हुआ स्वप्न निवेदन किया। क्योंकि पतिव्रता—सती स्त्री के लिये तो स्वप्न अपने पति को ही कहने योग्य है।

‘कमा’ श्रेष्ठ ने इस उत्तम स्वप्न का फल बड़े विचार पूर्वक कहा कि—“हे प्रिये ! इस उत्तम स्वप्न के फल में तुझे पुत्रोत्पत्ति होगी।” बस ! इस कथन को सुनती हुई कोडीम देवी अतीव आनन्द में निमग्न होगई। बस उसी रोज से देवीने गर्भको धारण किया। जब उत्तम जीवका जन्म होने वाला होता है तब माता को उत्तमोत्तम दोहद (गर्भ लक्षण) उत्पन्न होते हैं। इस गर्भ को धारण करने के बाद कोडीम देवी को भी उत्तमोत्तम दोहद उत्पन्न होने लगे। जैसा कि उसके चित्त में इस बातकी बखवती इच्छा हुई कि मैं गरीब लोगों को दान दूँ। जिनेश्वर भगवान्की पूजा करूँ। मुनिराज के द्वारा भगवान्की वाणी का पान करूँ। पवित्र मुनिराजों को दान दूँ। श्रीसंघमें स्वामी वात्सल्य करूँ। तीर्थ यात्रा करूँ, इत्यादि। कमा श्रेष्ठ ने विपुल द्रव्य से अपनी शक्त्यनुसार इन इच्छाओं को पूर्ण किया। देवी भी गर्भवती स्त्री के योग्य कार्यों को करती हुई जिसमें किसी प्रकार से भी गर्भ को तकलीफ न होवे उसी प्रकार यत्न पूर्वक रहने लगी।

दिन—प्रतिदिन गर्भ बढ़ने लगा। अनुक्रमे कोडीम देवी ने विधिक्रम संवत् १६०४ मिति फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा के दिन उत्तम

लक्षणोपेत पुत्रको जन्म दिया । इस बालक के मुख पर सूर्य के समान तेज चमकता था । सूति का गृह इन्ही बाळक के तेज से देदिप्यमान हो रहा था । कमा शेट के कुल में—मित्र मण्डल में असीम आनंद छा गया । शेटने बड़ा भारी जन्मोत्सव किया । अपने नगर के सैकड़ों याचक धनी कर दिये और वहाँ के राजा उदयसिंह से प्रार्थना करके या द्रव्य के जिस प्रकार हो सका बहुत से कैदी कारागार से छुड़वा दिये ।

बालक दिन—प्रतिदिन बढ़ने लगा । सब लोग इन्को देखकर आनंद में निमग्न होजाने लगे । जगत के इस नये अतिथि के उत्तमोत्तम लक्षण और चेष्टाएं देख कर सामुद्रिक शास्त्री लोग कहने लगे कि—‘यह बालक इस भूमंडल में जीवों को मोक्ष मार्ग को दिखाने वाला एक धर्म गुरु होगा’ । पुत्र को उत्तम लक्षणों से विभूषित देख कर उसका नाम ‘जयसिंह’ रखवा गया । अत्यन्त आश्चर्य को करने वाली प्रतिभा वाला यह बालक दिन पर दिन बढ़ने लगा । जयसिंह के उत्पन्न होने के बाद इस गांव की उन्नति अपूर्व ही रूप में होने लगी । अतएव यह बालक सारे नगर को प्रिय हुआ । यह ‘जयसिंह’ बालक जब पढ़ने के लायक हुआ, तब माता पिताने इस को शुभ मुहूर्त में बड़े महोत्सव पूर्वक पाठशाला में बैठाया । बुद्धिवान ‘जयसिंह’ बुद्धि के आधिक्य से उत्तरोत्तर अपूर्व विद्याओं की शिक्षा ग्रहण करता हुआ आगे बढ़ा । जब वह अपने अध्यापक से थोड़े समय में सम्पूर्ण विद्याओं को ग्रहण कर चुका तब उनके माता—पिता ने जयसिंह के विद्या गुरुका द्रव्यादिक से बहुत सत्कार किया ।

प्रिय पाठक ! देखिये क्या होता है ? जयसिंह अभी तो बाल्यावस्था में ही है । माता पिता की सेवा-भक्ति कुछ भी नहीं की है ।

पिता को एक पुत्र की लालशा थी, वह संपूर्ण पूरी होगई है। पिता ने अभी तो पुत्रका सुख कुछ भी नहीं लिया है। केवल उस के मुखचन्द्र का दर्शन मात्र किया है। ऐसी अवस्था में 'कमा' सेठ क्या सोचते हैं ? " मुझे एक पुत्र की इच्छा थी सो धर्म के प्रसाद से पूर्ण हुई है। पुत्र अवस्था के लायक होने आया है। अब मैं इस असार संसार को त्याग करके मोक्ष को देने वाली दीक्षा को ग्रहण करूँ " देखिये ! पाठक ! कैसी संतोष वृत्ति है ? उत्तम जीवों के तो यही लक्षण हैं ? सेठ को इस असार संसार से विरक्तभाव पैदा हुआ।

एक दिन की बात है—'कमा' सेठ ने बड़ी गंभीरता के साथ अपनी धर्म पत्नी से कहा कि—“ हे प्रिये ! हे भार्ये ! तुम्हें एक पुत्र हुआ है, अब तुम संतोष वृत्ति को धारण करो। मैं अब तुम्हारी अनुमति से तपगच्छिनायक गुरुवर्य भीविजयदानसूरीश्वर के पास दीक्षा ग्रहण करूंगा। ” पति के यह वचन कोडीमदेवी को तड़ित पात समान लगे। इन बच्चों को सुनकर सतीओं में शंखर समान कोडीमदेवी बोली कि—“ हे स्वामिन् ! हे ईश ! जैसे बिना चन्द्रमा की रात्रि सुख दायक हो नहीं सकती है, वैसे आपके बिना अज्ञान में रही हुई मैं क्या करूंगी ? मेरी क्या गति होगी ? सतीओं को माता शरण नहीं है। पिता शरण नहीं है। पुत्र शरण नहीं है। और भाई भी शरण नहीं। किन्तु सतीओं के लिये तो एक पति ही शरण है। अतएव हे स्वामिन् ! आप के साथ मैं हमारा भी मनुष्य जन्म का फल, तपस्या का आचरण ही होना उचित है। अर्थात् यह प्राण प्रिय 'जयसिंह' बालक के साथ मैं भी आपके प्रसाद से आपके साथ मैं तपस्या और व्रत अंगीकार करूंगी ”।

इस प्रकार के विलाप युक्त वचनों को सुन करके सेठ ने कहा कि “ हे भार्ये ! जैसे सर्प कंचुकी को छोड़ देता है वैसे ही मैं भी

गार्हस्थ्य को त्यागना चाहता हूँ । इतना ही नहीं किन्तु यह विचार मेरा निश्चित है । हे प्राण प्रिये ! यह जयसिंह अभी बालक है, अतएव तू इसकी रक्षा कर और इसके साथमें तू घर में रह । जब यह बालक बड़ा होजाय तब तुझे दीक्षा ग्रहण करनी हो तो करना । अभी तेरे लिये यह अनुचित बात है ।

ऐसे वाक्यों के समझाने पर कोडीमदेवी ने अपने पतिको दीक्षा लेने की आज्ञा दी । इस समय में तपगच्छनायक श्री विजयदानसूरी जी स्तम्भ तीर्थ में बिराजमान थे । अब 'कमा' श्रेष्ठ दीक्षा लेने के इरादे से नारदपुरी से शुभ मुहूर्त में खाना होकर थोड़े दिनों में स्तम्भ तीर्थ गए । वहाँ आकर आचार्य महाराज से प्रार्थना की कि " हे प्रभो ! हे भट्टारक पूज्यपादा ! दीक्षादान से मुझे अनुग्रह करिये । " तदनन्तर आचार्य श्रीविजयदानसूरीश्वर ने संवत् १६११ की साल में शुभ दिवस में इनको दीक्षा दी । अब कमा श्रेष्ठी 'मुनि' हुए । खड़क की धार की तरह चारित्र्य को फलन करने लगे । धर्म के मूल भूत विनय का सेवन करने लगे । और हृष्ट मन से पूर्व ऋषियों के सदृश 'साधु' धर्म का पालन करते हुए विचरने लगे ।

एक दिन अपने भगिनीपति 'कमा' श्रेष्ठी ने 'दीक्षा ग्रहण की है' ऐसा सुन करके पल्लीपुर (पाली) नगर से 'श्रीजयत' नामके संघपति कोडीमदेवी को मिलने के लिये 'नारदपुरी' आए वहाँपर कुछ रोज रहकर जयसिंह और उनकी माता कोडीमदेवी को वह श्रेष्ठी अपने घरपर लाए । मेरु की गुफा में जैसे कल्पवृक्ष और पर्वत की गुफा में जैसे केशरी सिंह निर्भय होकर रहता है, उसी तरह इस पल्लीपुर (पाली) नगर में 'जयसिंह कुमार' अपनी माता के साथ अत्यन्त हर्षित हो रहने लगे और नगर निवासियों को आनन्द देकर समय व्यतीत करने लगे ।

अब इस प्रकरण को यहां छोड़ करके दूसरे प्रकरण में प्रसंगानुसार श्रीमहावीर स्वामी की पाट परंपरा दिखाकर, आगे फिर इसी बार्ता का विवेचन किया जायगा ।

—:—

दूसरा प्रकरण ।

—*:—

(श्रीसुधर्मास्वामी से लेकर श्रीविजयदानसूरिपर्यन्त पाटपरंपरा और श्रीतपगच्छुकी उत्पत्ति इत्यादि ।)

प्रिय पाठक ! भगवान् श्रीमहावीर देव की पाट पर पहले पहल गणको धारण करने वाले, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्म और अकिंचन रूप पांच महाव्रतों को प्रगट करने और पालन करने वाले श्रीसुधर्मा स्वामी हुए । तदनन्तर ' श्रीजम्बूस्वामी ' हुए । इसके बाद प्रथम श्रुतकेवली ' श्रीप्रभवस्वामी ' हुए । प्रभवस्वामी के बाद ' श्रीसत्यम्भवसूरि ' हुए । जिन सत्यम्भवसूरिके गृहस्थावस्था में ' श्रीशान्तिनाथ भगवान् की प्रतिमा से मिथ्यास्वरूपी अन्धकार दूर होगया । इस पाट पर ' श्रीयशोभद्रसूरि ' हुए । तदनन्तर ' श्रीसम्भूतिविजय आचार्य ' और उवस्सग्गहरस्तोत्रले मरकीकी व्याधि को दूर करने वाले ' श्रीभद्रबाहुस्वामी ' हुए । यह दोनों गुरुभाई थे । इन्हीं में श्रीसम्भूतिविजय पट्टधर जानना चाहिये । श्रीभद्रबाहुस्वामी गच्छु की सार-सँभाल करने वाले थे, अतएव दोनों के नाम पाट पर लिखे जाते हैं । इन दोनों के पाट पर अन्तिम श्रुतकेवली ' श्रीस्थुलीभद्र ' हुए । श्रीस्थुलीभद्र स्वामी के बाद इनके मुख्य शिष्य आर्यमहागिरी और श्रीआर्यसुहास्ति के नामके दो प्रतिभाशाली पुरुष आठवीं पाट पर हुए । आठवीं पाट पर इन दोनों के होने के

बाद 'सुस्थित' और 'सुप्रतिबुद्ध' इस नामके दो आचार्य हुए। इन दोनों के द्वारा 'कौटिक' नामका गच्छ चला। क्योंकि ऐसा कहा जाता है कि इन्होंने एक कोटि बार सुरिमंत्र का स्मरण किया था। यहां पर यह बिचारणीय बात है कि श्रीहेमचन्द्राचार्य तो 'सुस्थित सुप्रतिबुद्ध' ऐसा अखंडित नाम वाले एक ही मुनिको मानते हैं। क्योंकि श्रीहेमचन्द्राचार्य प्रभुने अपने त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र की प्रशस्ति में लिखा है कि:—

अजनि 'सुस्थितसुप्रतिबुद्ध' इत्यभिधयाऽऽर्यसुहृस्तिमहामुनेः ।

शमधनो दशपूर्वधरोऽन्तिषद् भवमहातरुभञ्जनकुञ्जरः ॥१॥

अब गुर्वावली में तो दो अलग २ सुरि कहे हुए हैं। 'विजयप्रशस्ति' ग्रन्थकारने भी तदनुसार दो पृथक् नाम गिनाए हैं। इन कौटिक गच्छ में क्रमसे 'श्रीइन्द्रदिक्षसुरि' 'श्रीदिक्षसुरि' और 'श्रीसिंहगिरि' होने पर दशपूर्व धर 'श्रीवज्रस्वामी' नाम के आचार्य तेरहमी पाठपर हुए। इस वज्रस्वामीने बाल्यावस्थामें ही आचाराङ्गादि ग्यारह अंगों को निर्दम्भ हो के, पारिणामिकी बुद्धि से और पदानुसारिणी लब्धि करके कण्ठाग्र किये थे। श्रीवज्रस्वामी की ख्याति से इस जगत् में वज्र शाखा प्रसिद्ध हुई। इस वज्र शाखा की कीर्ति अद्यावधि लोगों में विद्यमान है। वज्रस्वामी के शिष्यों में मुख्य शिष्य 'श्रीवज्रसेन' गच्छ के नायक हुए। इन 'श्रीवज्रसेन' सुरि को 'नागेन्द्र', 'चन्द्र', 'निवृत्ति', और 'विद्याधर' नाम के चार शिष्य थे। इन चारों के नाम से चार कुल उत्पन्न हुए। जैसे कि— नागेन्द्रकुल, चान्द्रकुल, निवृत्तिकुल और विद्याधर कुल। इन चार कुलों में भी चान्द्रकुल जगत् में बहुत प्रसिद्ध है। इस चान्द्रकुल के उत्पादक श्रीचन्द्राचार्य से अनुक्रम करके 'श्रीसामन्तभद्र सुरि', 'श्रीवृद्धदेवसुरि', 'श्रीप्रद्योतनसुरि', 'श्रीमान देवसुरि', श्रीमानतु-

‘भूसुरि’, ‘भ्रीवीरसुरि’, ‘भ्रीजयदेवसुरि’, ‘भ्रीदेवानन्दसुरि’, ‘भ्री-
विक्रमसुरि’, ‘भ्रीनरसिंहसुरि’, ‘भ्रीसमुद्रसुरि’, ‘भ्रीमानदेवसुरि’,
‘भ्रीविबुधप्रभसुरि’, ‘भ्रीजयानन्दसुरि’, ‘भ्रीरविप्रभसुरि’, ‘भ्री-
यशोदेवसुरि’, ‘भ्रीप्रद्युम्नसुरि’, ‘भ्रीमानदेवसुरि’, ‘भ्रीविमल-
चन्द्रसुरि’, ‘भ्रीउद्योतनसुरि’, ‘भ्रीसर्वदेवसुरि’, ‘भ्रीदेवसुरि’,
‘भ्रीसर्वदेवसुरि’, ‘भ्रीयशोभद्रसुरि’, ‘भ्रीनेमिचन्द्रसुरि’, ‘भ्री-
मुनिचन्द्रसुरि’, ‘भ्रीअजीतदेवसुरि’, और ‘भ्रीविजयसिंहसुरि’ महो-
दयों के होने के बाद प्रारंभ से तैतालीसमी पाटपर एकही गुरु के
शिष्य भ्रीसोमप्रभसुरि और भ्रीमणिरत्नसुरीश्वर हुए। तदन्तर इस
पाटधर चान्द्रकुल रूपी समुद्र में चन्द्र समान भ्रीजगच्चन्द्रमुनी-
श्वर हुए।

भ्रीजगच्चन्द्रसुरीश्वर ने बारह वर्ष पर्यन्त आर्यविल तप की आ-
राधना की। इस तप के प्रताप से पृथीपर कलंक नाश हुआ अर्थात्
वह “तपा” ऐसी ख्याति संसार में प्रगट हुई। संवत् १२८५ के साल
से भ्रीजगच्चन्द्रसुरि से इस जगत में ‘तपगच्छ’ की प्रसिद्धी हुई।
इस तपागच्छ से बढ़कर अन्यत्र सम्यक्चरण-करण-समाचारी रूप
क्रिया हैन्ही नहीं। अब इस चवालीसमी पाटपर हुए जगच्चन्द्रसुरिसे
अनुक्रमेण ‘भ्रीदेवसुरि’, ‘भ्रीधर्मघोषसुरि’, ‘भ्रीसोमप्रभसुरि’,
‘भ्रीसोमतिलकसुरि’, ‘भ्रीदेवसुन्दरसुरि’, ‘भ्रीसोमसुन्दरसुरि’,
‘भ्रीमुनिसुन्दरसुरि’, ‘भ्रीरत्नशेखरसुरि’, ‘भ्रीलक्ष्मीसागरसुरि’,
‘भ्रीसुमतिसाधुसुरि’, महोदयों के होने के बाद पचवनवीं पाटपर सू-
रीश्वरों में श्रेष्ठ ‘भ्रीह्रिमविमलसुरि’ हुए। और इनकी पाटरूप कुंभप्र-
देशमें ‘भ्रीआनन्दविमलसुरि’ विराजमान हुए। यही भ्रीआनन्दविमल-
सुरि सं० १५८२ में एक दिन पचन नगर के निकट भ्रीवटपल्ली नगरी
में अपने शिष्य परिवार भ्रीविनयभाव परिडित आदिकों को साथ में

केकर पधारे थे। इस समय में साधुओं में परिग्रह और क्रिया में शिथिलता की वृद्धि होगई थी; अतएव इन आचार्य महाराजने उपयोगी मन्त्र, पात्र और पुस्तक को छोड़करके दूसरे सब परिग्रहों को हटाया और क्रिया में भी यथोचित सुधार किया।

पूज्य मुनिवरों का और विशेष करके आचार्यादि उच्च पदवी धारक महाराजों का इस ओर ध्यान होना उचित है। पूज्यो ! वर्तमान समय भी ऐसाही आया है जैसा कि भीमानंदविमलसूरि के समयमें आया था। आजकल धार्मिक बातों में अनेक प्रकार की शिथिलता देखने में आरही है। इनका अधिक वर्णन करके निन्दा-स्तुति करने का यह स्थल नहीं है। इदानीन्तन दोषों को देखकर यह सब लोग स्वीकार करेंगे कि वर्तमान समय में उपर्युक्त दोनों बातों में सुधार करने की बहुतही आवश्यकता है। भीमानंदविमलसूरिजी की तरह इस समय में भी कोई सूरेश्वर या मुनि मण्डल निकल पड़े तो क्याही अच्छा हो ? अस्तु !

भीमानंदविमलसूरि जीने अपनी उपदेश शक्ति से कुतिर्थियों की युक्तियों को नष्ट करके शुद्ध मार्ग का प्रकाश किया। इस सूरेश्वर के प्रभाव से हजारों जीवों ने ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूप रत्नत्रय प्राप्त किया। सिवाय इसके अष्ट प्रवचन माता में यत्नवान भीमानंदविमलसूरि ने छट्ट, अट्टम, आलोचनातप, विशस्थानकतप, अष्टकर्मनाशकतप, आदि तपस्या के द्वारा अपने शरीर को कृश करने के साथ अपने पापों को भी भस्म कर दिया। जिस पूज्यपाद ने भीतपागच्छरूप आकाश में उदयावस्था को प्राप्तकर भीमहावीरदेव की परम्परारूप समुद्र के तटको अत्यन्तही उल्लास से अलंकृत किया। यह सूरेश्वर ने, अपनी पाटपर आचार्यवर्य भीविजयदानसूरि को स्थापित करके सं० १५१६ में समाधी को भजते हुए, अहमदाबाद के निकट निजामपुर नगर में इस मर्त्यलोक को त्याग करके देवलोक को अलंकृत किया।

आचार्य भीविजयदानसूरीश्वर इस भूमंडल में अनेक जीवों को शुद्ध मार्ग को दिखाते हुए विचरते रहे । आपने एकादशांगि की और बारह उपगंग की प्रतियाँ को अपने हाथ से कईबार शुद्ध किया । इस भीविजयदानसूरिजी की क्रिया, स्वभाव और आचार कुशलता को देखने वाले लोग भीसुधर्मास्वामी की उपमा को देते थे । एक दिन की बात है कि भीविजयदानसूरिप्रभु मरुदेश को अलंकृत करते हुए क्रमशः 'भजमेरुदुर्ग' (लौकिक पुष्कर तीर्थके निकट) पधारे इस दुर्ग में रहने वाले जिनप्रतिमा के शत्रु 'लुंका' नामक कुमति के रागी लोगोंने क्रूर आशय और द्वेष बुद्धि से दुष्ट व्यतर भूत-पिशाच वाला मकान विजयदानसूरिजी को ठहरने के लिये दिखाया । सूरीश्वरने भी अपने शिष्य मण्डल के साथ उल्लि मकान में निवास किया । उक्त मकानमें रहने वाले दुष्ट देवोंने मनुष्योंको मारने की चेष्टाएँ शुरू की । वे अनेक प्रकारके बिभत्सरूपों को धारण करके उस समुदायके साधुओं को डराने लगे । एकदिन यह बात साधुओं ने अपने आचार्य महाराज को निवेदन की । आचार्य महाराज ने अपने मनमें विचार किया कि जैसे पानी के प्रवाह से बन्धि का नाश होता है वैसे पुण्य के प्रभाव से यह विघ्न भी आप ही सब शान्त हो जायेंगे । उस रोज रातको साधु लोग आवश्यक क्रिया—पौरुषी आदि करके सो गये । किन्तु हमारे सूरीश्वरजी निद्रा न लेकर सूरि मंत्रका ध्यान करने लगे । उस समय भीविजयदान सूरीश्वर के सामने धीठ होते हुए, हास्य करते हुए, रुदन करते हुए, पृथ्वी पर जोर से गिरते हुए, अनेक प्रकार के विरुद्ध शब्द करते हुए, नाना प्रकार की क्रिड़ाओं को खेलते हुए और बाल चेष्टाओं को फैलाते हुए वे देवता लोग आने लगे । किन्तु उन देवों की सभी चेष्टाएँ सूरीश्वर के सामने व्यर्थ होगई ।

सुरीश्वर अपने ध्यान में ऐसे निमग्न थे कि इन क्रिया से किञ्चिन्मात्र भी विचलित नहीं हुए और बराबर अपना शुद्ध भाव धारण किये आसन पर विराजते रहे । जब नगरवासी सब लोगों को यह विश्वास हुआ कि सुरीश्वर के प्रभाव के व्यन्तरी का सर्वद के लिये विघ्न दूर होगया । तब लोग मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करने लगे "अहो ! इन मुनिराजों का कैसा प्रभाव है ? कैसा तपस्तेज है ? सभी लोग रागी होगये । जैसे सर्प अपनी कंचुकी का शीज त्याग कर देता है उसी तरह वही लोगों ने कुमति-कदाग्रह को त्याग करके विशुद्ध मार्ग को अंगीकार किया ।

श्रीविजयदानसुरीश्वर ने गुजरात पञ्चन नगर-गान्धार बंदर-महीशानक-विश्वल नगर एवं मरु देश में नारदपुरी, शिवपुरी आदि नगरों में, तथा मेढपाट (मेवाड़) में घाटपुर, चित्रकुट दुर्ग आदि में, इसी प्रकार मालव देश में दध्यालयपुर आदि स्थानों में अनेक जिनर्षियों की प्रतिष्ठा कराई । साथही साथ अपने उपदेशसे हजारों जीवों को प्रतिबोधित किया । ऐसे ही अनेक कार्यों को करते हुए श्रीविजयदानसुरीश्वर पृथ्वीतल में विचरते रहे । कहना परमआवश्यक है कि श्रीविजयदानसुरी गच्छ के नायक, धुरंधर आचार्य होने पर भी आप त्याग-वैराग्य में भी किसी से कम नहीं थे । इस बातकी प्रतीति इसी से ही होनी है कि आप घृत-दुग्ध-दधि-गुड़-पक्कान-तैल ये छः विकृतिओं में से सिर्फ घृतही को ग्रहण करते थे । कहिये । कैसा वैराग्य है ? कैसी त्याग वृत्ति है ? अब यह प्रकरण यहां ही समाप्त करके, आगे के प्रकरणमें श्रीविजयदानसुरीश्वर के पट्टधर श्रीहीरविजयसुरी जी इत्यादि का वर्णन किया गया है ।

तीसरा प्रकरण ।

—:—

(हीरविजयसूरि का जन्म, दीक्षा, परिडत्तपद, उपाध्यायपद,
आचार्यपद इत्यादि)

भीहीरविजयसूरि का जन्म सुप्रसिद्ध गुजरात देश के भूषणरूप
प्रल्हादपुर (पालनपुर) में हुआ था । प्रल्हादपुर के विषय में एक
ऐसी कथा है:—

“ प्राचीनकाल में एक 'प्रल्हाद' नामका राजा हुआ था । उस
राजाने भीकुमारपाल राजाकी बनवाई हुई सुवर्णमयी भीशान्तिनाथ-
भगवान् की प्रतिमा अग्नि में गलादी । और उसकी वृष बनाकर
अच्छलेश्वरके सामने स्थापित किया । अब इस पापसे राजाको महा-
दुष्ट-कुष्टका रोग उत्पन्न हुआ । इस रोग के कारण राजा का तेज
लावण्य इत्यादि जो कुछ था सब नष्ट होगया । राजा ने अपने नाम
के प्रल्हादपुर (पालनपुर) नामका ग्राम बसाया । इसके बाद भी
शान्तिनाथप्रभुकी मूर्तिको गलादेनेसे जो पाप लगाया उसकी शान्ति
के लिए राजा ने अपने नगर में भीपार्श्वनाथप्रभु का 'भीप्रल्हादन-
विहार' नामका चैत्य बनवाया । इस मन्दिर के बनवाने के पुण्य से
राजा का रोग शान्त होने लगा । और कुछ दिनों के बाद राजा ने
अपने असली रूप तथा लावण्य को प्राप्त किया । सारे नगर के
लोग इस पार्श्वनाथप्रभु के दर्शन से सर्वदा अपने जन्म को कृतार्थ
करने लगे । ”

इसी नगर में एक 'कुंरा' नामका भेष्टी रहताथा । यह सत्पुरुष
भेष्ट बुद्धि, दया-दाक्षिण्य—निर्लोभता—निर्मायिता-इत्यादि सद्गुणों
से अलंकृत था । इतना ही नहीं यह सेठ ब्रह्मचारी गृहस्थों में एक
शिरोमणि रत्न था । इस महानुभावको एक 'नाथी' नाम की बड़ी

सुशीला ली थी । यह पतिव्रता अपने पति के साथ सांसारिक सुखों को आनन्द अनुभव करती थी । इस धर्म परायणा नाथीदेवी ने उत्तम गर्भ को धारण किया । जिस प्रकार शुक्ति में मुकाफल दिन-प्रतिदिन बढ़ता है । उसी प्रकार गर्भवती का गर्भ भी दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगा । इस उत्तम गर्भ के प्रभाव से शेट के घर में आदि-समृद्धि की अधिक वृद्धि हो गई ।

नवमास पूरे होने के अनन्तर सं० १५८३ के मार्गशिरष सुदी ४ के दिन इस देवीने उत्तमोत्तम लक्षणोपेत पुत्र को जन्म दिया । शेट ने इस पुत्रके जन्मोत्सव में बहुत ही उत्तमोत्तम कार्य किये । शेट के वहाँ कई दिनों तक मंगलगीत होने लगे । याचकों को अनेक प्रकार से दान दिए । सारे नगर के आबाल वृद्ध सब प्रसन्न मन होकर उस महोत्सव में सम्मिलित हुए । 'उत्तम पुरुषों का जन्म किस को आनंद देने वाला नहीं होता है ? चन्द्रमा की कला के समान दिन-प्रतिदिन यह प्रतिभाशाली बालक बढ़ने लगा । जो लोग इसको देखते थे वो यही कहते थे कि यह भारतवर्ष का अपूर्व तेजस्वी हीरा होगा । इस बालक की माता ने स्वप्न में 'हीरा-शी' ही देखी थी । पुत्र के उत्तमोत्तम लक्षण भी छिपे हुए नहीं थे । अर्थात् वह हीरे की तरह चमकता था । बस कहना ही क्या था ? सब लोगों ने मिल कर इसका नाम भी 'हीरा' रख दिया । लोग इसको 'हीरजी' करके पुकारते थे । काल की महिमा अविनश्य है । हुआ क्या ? हमारे हीरजी भाइके माता पिताने थोड़े ही दिनों में सम्यक् आराधना पूर्वक देवलोक को अलंकृत किया । कुछ दिन व्यतीत होने के बाद हीरजी भाइ अपने माता-पिता का शोकदूर करके अपनी बहन को मिलने के विचार से भीमणहिलपाटक (अणहिलपुर पाटन) गये । बहन अपने भाइकी सुन्दर आकृति को

देख कर बहुत ही हर्षित हुई। वह सबसे प्रेम का पान करने लगी। प्रिय पाठक ! अब देखिये क्या होता है ?।

इधर मुनिपुङ्गव सद्गुणनिधान श्रीविजयदानसूरीश्वरजी भी उसी नगर में विराजमान थे। जन्म संस्कार से हमारे हीरजीभाई का साधुपर पूर्ण प्रेम था। एक रोज हीरजीभाई उपाश्रय में चले गए। सूरीश्वर को नमस्कार करके एक जगह बैठ गए। तब सुरिजी ने इन्हीं के योग्य बहुत ही मनोहर धर्म देशना दी। 'निकटम-घीपुरुषों के लिये थोड़ी भी देशना बहुत उपकार कारक होती है।' बस ! उपदेश सुनतेही हीरजी को संसारसे विरक्तभाव पैदा होगया। हर्ष प्रकर्ष से गद गद होकर अपनी बहनके पास आकरके बड़े विनय भाव से कहने लगे:—

“ हे सौंदरि ! हे बहन ! मैंने आज संसार सागरसे तारने वाली और अपूर्व सुखको देनेवाली श्रीविजयदानसूरीश्वर महाराज के सुखाभिंद से धर्म-देशना सुनी है। अब मैं उन गुरुजी से अवश्य सीखा ग्रहण करूंगा। अतएव हे प्रिय बहन ! तू मुझे आश्वादे ”।

इस वाक्य को सुनते ही बहन का कलेजा भर आया और वह अभुमुखी होती हुई अपने लघु बन्धु को बड़े प्यार से कहने लगी।

हे प्रिय बन्धो ! हे कोमल हृदयी वत्स ! तेरे लिये दीक्षा बड़ेही कष्ट से सेवन करने योग्य है। भाई ! दीक्षा लेने के बाद धूप-जाड़ा सहन करना पड़ेगा। खुलाशिर रखना पड़ेगा। केश का लुञ्चन करना पड़ेगा। नंगे पाँव से चबना पड़ेगा। घर २ भिक्षा मांगनी पड़ेगी। अनेक प्रकारकी तपस्याओं का सेवन करना पड़ेगा। बाइस परिसर्हों को सहना पड़ेगा। इस लिये अभी तेरे लिये दीक्षा योग्य नहीं है। तू प्रथम तो एक सुरस्त्री जैसी पद्मणी स्त्री के साथ शादी करले। उनके साथ में अनेक प्रकार के सांसारिक सुखों को

भोग ले । हे वत्स ! जैसे लता को वृक्ष आधार है वैसे मेरे लिये तू ही आधार है ” ।

ऐसे २ मधुर वचनों से समझाने पर भी हीरजी अपने विचार में निश्चल रहा और उसने बैद्यकी तरह वैराग्य वचनरूपी औषधि से अपनी बहन के हठरूपी रोग को दूर किया ।

इसके बाद हीरजी उपाश्रय में आकर वंदनापूर्वक गुरु महाराज से कहने लगा—‘हे भगवन् ! आपके पास मैं क्लेश को नाश करने वाली दीक्षा ग्रहण करने आया हूँ । मेरी इच्छा है कि आपसे मैं दीक्षा ग्रहण करूँ । आचार्यवर्य इस बालक के कामल वचनों को सुनते ही हर्षित होगये । क्योंकि कहा भी है कि—

‘शिष्यरत्नस्य प्राप्तौ हि हर्ष-उत्कर्षभाग भवेत्’

शिष्यरत्न की प्राप्ति में बड़े लोगों को भी हर्ष होता है । सामुद्रिक शास्त्र में कहे हुए उत्तम लक्षणों को देख करके तपगच्छनायक श्रीविजयदानसूरिजीने निश्चय किया कि यह बालक होनहार गच्छनायक देख पड़ता है । अस्तु ! इसके बाद अतुल द्रव्य खर्च करके एक बड़ाभारी दीक्षा महोत्सव किया गया । खान पान नाटक चेष्टक इत्यादि बड़ी धूमधामके साथ एक सुंदर रथ में बैठाकर नगर के समस्त मनुष्यों से वेष्टित इस कुमार को नगर के मध्य में हो करके लेबले । इस प्रकार से बड़े समारोह के साथ वनको जाते हुए बालक को दर्शक लोग आश्चर्य में होकर देखने लगे । नियत किए हुए स्थान में सं० १५६६ कार्तिक कृष्ण द्वितीया के दिन शुभमुहूर्त में हीरकुमार ने श्रीविजयदान सूरिश्वर के पास दीक्षा ग्रहणकी । गुरु महाराजने इसका नाम ‘हीरहर्ष’ रक्खा । इसके बाद यह मुनि ज्ञान-दर्शन-चारित्र्यकी आराधना सम्यक्-प्रकार से करते हुए, गुरुचरणार्चि की सेवा में लवलीन रहते हुए गुरुवर्य के साथ में हर्षपूर्वक विचरने लगे ।

अब हीरहर्षमुनि, प्राणाति पात-मृषावाद्-अदत्तादान-मैथुन और परिग्रह विरमणरूप पांच महाव्रतों को, श्यासमिति-भाषासमिति-पषणा-समिति-निक्षेपणासति-पारिष्ठापनिकासमिति रूप पांच समिति को, मन-गुप्ति-वचनगुप्ति-कायगुप्ति रूप तीनगुप्ति को सम्यक्प्रकार से पालन करने लगे । आपने थोड़े ही समय में अपने गुरु महाराज से स्वशास्त्र का सम्पूर्ण अभ्यास कर लिया और जैनसिद्धान्त के पारगामी हो गए । एक दिन गुरुवर्य श्रीविजयदानसूरिजी अपने अन्तःकरण में सोचने लगे कि “ यह हीरहर्षमुनि बड़ाबुद्धिमान है, तार्किक है, अतएव यह अगर शैवादिशास्त्रों को जानने वाला होजाय तो बहुत ही उत्तम हो । जगत में यह अधिक उपकार कर सकेगा, जैन शासन का उद्योत भी विशेषरूपेण कर सकेगा । ” इस विचार को मुनि महाराज ने केवल मन ही मात्र में न रक्खा, किन्तु इसको कार्य में लाने की भी कोशिश की । आप ने शीघ्र हीरहर्षमुनि को दक्षिण देश में जाने की प्रेरणा की । क्योंकि उस समय में दक्षिण में शैवादि शास्त्रों के वेत्ता अछूटे परिदृष्ट उपस्थित थे । हीरहर्ष तो तय्यारही थे । केवल आज्ञा की ही देरी थी । श्रीविजयदानसूरीश्वर ने श्रीधर्मसागरगणि प्रमुख चार मुनिराजों के साथ में हीरहर्ष को दक्षिण देशकी ओर भेजा । दक्षिण देश में एक देवगिरिनामका किला था । वहां जाकर इन पांचों ऋषियों ने निवास किया । इस देवगिरि में रह कर इन्होंने चिन्तामण्यादि शैवादि शास्त्रों का प्रखर पाण्डित्य थोड़े ही दिनों में प्राप्त किया । कार्य सिद्धि होने के बाद ये लोग तुरन्तही गुजरात देश में लौट आए । जिस समय यह गुजराज आए उस समय गुरुवर्य श्रीविजयदानसूरि, गुजरात में नहीं थे किन्तु मरुदेश में बिहार कर गये थे । अत एव गुरु महाराज के दर्शन करने में उत्सुक भीहीरहर्षमुनि ने भी मरुदेश प्रति प्रस्थान किया । थोड़े ही दिनों में नारदपुरी, जहां श्रीविजयदानसूरी-

श्वर विराजते थे, आ पहुंचे । बस ! कहना ही क्या ? बड़े विद्वान् और विनयवान् शिष्य के आने से गुरुमहाराज को अत्यन्त हर्ष प्राप्त भया । हीरहर्ष के लिए तो कहनाही क्या ? इस महानुभाव को तो गुरुमहाराज को देखते ही हर्ष के अश्रु निकलने लगे । तात्कालिक बनाये हुए १०८ श्लोक का पाठ करके, ब्रह्माञ्जलीपूर्वक, बिधि सहित हीरहर्ष ने गुरुमहाराज को बंदना की । चन्द्र को देख करके जैसे समुद्रकी उर्मियें उल्लास को प्राप्त होती हैं । वैसे ही पुत्र समान, विद्वत्कलासम्पन्न शिष्य को देख २ कर गुरुवर्य महाराज हर्षित होने लगे ।

कुछ समय बाद उसी नारदपुरी नगरी में सं-१६०७ में शुभदिन को देख करके भीष्मभदेवप्रभु के प्रसाद में गुरुमहाराज ने इन हीरहर्ष को सभा समक्ष 'विद्वद्' पद दिया । इस पद को पालन करते हुए केवल एकही वर्ष हुआ कि नारदपुरी के समस्त श्रीसंघने तपगच्छाचार्य भीविजयदानसूरि महाराज से प्रार्थना की ' हे प्रभो हम लोगों की यह प्रार्थना है कि श्रीहीरहर्ष परिडित को ' उपाध्याय ' पद दिया जाय तो बहुतही उत्तम बात है । गुरुमहाराज के मनमें तो यह बात थी ही और संघने विनति की । सूरिजी महाराज के विचार और भी पुष्ट हुए । इसके बाद सं० १६०८ मिति माघ शुक्ल पञ्चमी के दिन नारदपुरी ही में श्रीसंघ के समक्ष भीवरकाणा पार्श्वनाथकी शास्त्री में, भीनेमिनाथ भगवान् के चैत्य में गच्छ में उपस्थित समस्त साधुओं की अनुमति सहित श्रीहीरहर्ष परिडित ' उपाध्याय ' पद पर स्थापित किए गये ।

उपाध्याय पद पर नियत होने के पश्चात् सूरिजीने सोचा कि भीतपागच्छ का आधिपत्य हीरहर्षोपाध्याय को होगा । ऐसा विचार करके आपने सूरिमन्त्र का आराधन करना आरम्भ किया । जब पूरे तीन

मास होगये, तब सूरिमंत्र का अधिष्ठायाक देवता अत्यन्त हर्षपूर्वक भीसूरिमहाराज के सन्मुख प्रत्यक्ष होकरके कहने लगा:—‘ हे प्रभो ! हीरहर्ष नामक वाचक आपकी पाटपर स्थापन होने योग्य है ’। बस ! इतनाही कह करके वह अन्तर्धान होगया ।

देवता का उपरोक्त बचन सुन करके सूरिजी को अत्यन्त हर्ष हुआ । आपने अपने मन में विचार किया कि यह बड़े आश्चर्य की बात है कि इस देवताने मेरेही अभिप्राय को स्पष्ट रूपसे कहा । सूरेश्वर ने आ करके यह बार्ता अपने मंडल में प्रकाश की । समस्त साधुमण्डल ने यही कहा कि “जैसी आपकी इच्छा हो, वैसेही कार्य होगा” । इसके बाद सं० १६१० मिति मार्गशिर्ष शुक्ल दशमी के दिन शुभमुहूर्तमें महोत्सव पूर्वक ‘शिरोही’ नगर में चतुर्विध संघकी सभा के समक्ष परमगुरु श्रीविजयदानसुरेश्वर ने तप-गच्छ के साम्राज्यरूप वृक्षक बीज भूत श्रीहीरहर्ष वाचक को ‘आचार्य’ की पदवी दी । सूरिपद होने के समय भीहीरहर्षोपाध्यायका नाम ‘श्रीहीरविजयसूरि’ रक्खा गया ।

प्रियपाठक ! देख लीजिये ! आचार्य पदवीयोंकी कैसी परिपाटी थी ? । भाग्यवान् पुरुष पदवी को नहीं चाहते हैं किन्तु पदवीयें भाग्यवानों को चाहती हैं । खेद का विषय है कि आजकल के लोग पदवीयों के पीछे हाथ पसारें घूमते—फिरते हैं । गृहस्थों के सैकड़ों-हजारों रुपये नष्ट करवा देते हैं । फिर भी पदवी मिली तो मिली नहीं तो लोक में अप्रतिष्ठा होती है । क्या दो-चार पाण्डितों को किसी प्रकार प्रसन्न कर लिया और इसी रीति से कोई भी टाइटल पाकर कृतकृत्य होजाना ही यथार्थ पदवी पाना है ? ऐसा नहीं है, यदि उच्च पदपर बैठने की इच्छा है तो पदवी परमात्मा के घरकी लेने की

कोशिश करनी चाहिये । किन्तु ठीक है ! निर्नाथ जैन प्रजा में वर्तमान समय में जो न हो सो थोड़ा है ।

‘शिरोही’ नगर से विहार करते हुए श्रीविजयदानसूरि महाराजने श्रीहीरविजयसूरि को पत्तन (पाटण) नगर में चातुर्मास करने की आज्ञा दी । और आप स्वयं कोकण देश की भूमि को पवित्र करते हुए सुरत बन्दर पधारे ।

चौथा प्रकरण ।



(श्रीविजयसेनसूरि की दीक्षा, उपाध्याय-आचार्यपद, ‘मेघजी’ आदि सत्ताईस परिडतों का लुंपाकमत त्यागना, और सुरत में दिगम्बर परिडत, श्रीभूषण के साथ शास्त्रार्थ करके उसको परास्त करना इत्यादि)

इधर ‘जयसिंह’ बालक अपनी माता के साथ अपने मामा के यहां पशु-आराम से दिवस व्यतीत कर रहा है । समस्त लोगों को आनंद दे रहा है । एक रोज यह बालक अपनी माता से कहने लगा “ हे जननि ! हे मातः ! अब मैं अपने पिता ‘कमा’ ऋषि की तरह जन्म-मरणादि व्यपत्तियां को नाश करने वाली दीक्षा ग्रहण करने की इच्छा वाला हूं, अर्थात् जो मार्ग मेरे पिता ने लिया है वही मार्ग मैं लेना चाहता हूं ” ।

इन वाक्यों को सुन करके माता कहने लगी “ हे बालक ! तू अभी बहुत छोटा है । लोहभार की तरह बिषम बोझ वाली और शारीरिक सौख्य को ध्वंस करने वाली दीक्षा अभी तेरे योग्य नहीं

है। हे पुत्र ! तीक्ष्ण तलवार की धारपर चलना सुगम है। किन्तु दीक्षा ले करके उसको पालन करना बड़ा कठिन है। हे सुकुमार ! अभी तू एक मनोहर रूपवाली कन्या के साथ विवाह करके गृहस्थावस्था का समस्त सुख भोगले। देवांगना तुल्य सुन्दर स्त्री के साथ देवता की तरह समस्त सुखों का अनुभव करले ”।

इस प्रकार माताके बच्चों को सुनता हुआ ‘जयसिंह’ बालक बोला “ हे मातः ! आसन्नोपकारी भीमहावीर देवने मुक्तिमार्ग में निबद्ध बुद्धि वाले पुरुषों के लिये तो गृहस्थावस्था महा पापका कारण दिखलाया है। अतएव मुझे तो ऐसे अगारवास की इच्छा नहीं है। वह स्त्री और वह नाटक-चेटक, सज्जन पुरुषों को धर्म हानक नहीं होते हैं। मैं समस्त प्राणियों में अद्भुत अभयदान को देने की इच्छा करता हूँ। हे अम्बे ! समाधियुक्त मन वाले महात्मा पुरुषों के मार्गमें चलने का मेरा विचार है और उस मार्गमें संसार सम्बन्धी दुष्कर्म-व्यापार-प्रयासादिरूप आपत्तिपं सर्वदा नहीं है। अतएव मेरी तो यही इच्छा है कि तुम भी शीघ्रतया उत्सुक मन होजा। अर्थात् संयम स्वीकार करने में मेरी सहायता कर। इन वाक्यों को सुनकर और बालक का निश्चय विचार जान कर एक दिन इस बालक को साथ में ले करके कोडिमदेवी ने सूरत जाने के लिये प्रस्थान किया। मार्ग में जगह २ देवदर्शन-गुरुदर्शन करते हुए, त्रस-स्थावर जीवों की रक्षा करते हुए और भावचारित्र को धारण करते हुए बहुत दिन व्यतीत होने के बाद यह ठोग सूरतबन्दर में जापहुंचे। इस समय सूरत बन्दर में श्रीविजयदानसूरीश्वर विराजते थे। अपने सुकुमार वयस्क बालक को साथ लेकर कोडिम देवी ने गुरु महाराज को विधि पूर्वक प्रणाम किया। विनीत भावसे हाथ जोड़कर कहने लगी। मेरी यह इच्छा है कि इस बालक के

सहित आपके पास चरित्र ग्रहण करूं। आप हम दोनोंपर अनुग्रह करिये”। देवी के इस वचन को सुनकर और मनोहर आकृति युक्त बालक को देखकर गुरु महाराज अपने अंतःकरण में हर्षित हुए। इस ‘जयसिंह’ बालक के मुख माधुर्य में गुरु महाराज की दृष्टि बार २ स्थिति पूर्वक पड़ने लगी। इस बालक के प्रत्येक शरीर-वचन और गति इत्यादि को शस्त्रोक्त रीत्या देखकर गुरु महाराज ने सोचा कि यह बालक इस जगत में प्रभावशाली पुरुष होगा। पराक्रमी और अपूर्व कार्यों को करने वाला होगा।

यह विचार करते हुए अपने दीक्षा देने का विचार निश्चय रक्खा। भ्रातृवर्ग ने एक बड़ा भारी अठाइ महोत्सव बड़ी धूम धाम से किया। जिसका वर्णन इस लेखनी की शक्तिसे बाहर है। दीक्षा के दिन अनेक प्रकार के आभूषणों से अलंकृत ‘जयसिंह’ कुमार हस्तिपर आरोहण होकर, शहर के समस्त मार्गों में परिभ्रमण करता हुआ और अनुष्ठान को देता हुआ गुरु महाराज के पास आया। नियत किये हुए स्थान में सं० १६१३ मिति ज्येष्ठ शुक्ल पक्षादशी के दिन शुभ मुहूर्त में ‘जयसिंह कुमार’ और उनकी माता कोडिमदेवी को दीक्षा दी गई। गुरु महाराज ने ‘जयसिंह’ का नाम ‘जयविमल’ रक्खा। दीक्षा देने के अन्तर सूरिश्वर ने यह चातुर्मास सूरत में ही किया। यद्यपि इस समयमें जबसिंह (जयविमल) मुनि ६ ही वर्ष के थे तथापि अपनी शुद्ध बुद्धि से उन्होंने ब्रह्म-स्वामी की तरह शास्त्राध्ययन कर लिया। अर्थात् गुरु महाराज से कितनेही शास्त्र पढ़ लिये।

एक दिन भीमजिज्ञदानसूरिश्वर ने विचार किया कि ‘यह जयविमल विनयादि गुणोंसे बिभूषित है, तीक्ष्णबुद्धि वाला है, उत्तम लक्षण पड़े हैं अतएव यह मुनि हीरबिजयसुर के पास में विशेष बोधयता

प्राप्त करेगा' बस । बही बिचार हठ करके महाराज ने जयविमल को गुजरात जानेके लिये आज्ञा दी । विहार करते हुए जयविमलको उत्तमोत्तम लाभ सूचक शकुन हुए । आप जगह-उपदेश दानको करते हुए बहुत दिनों में गुजरात जा पहुँचे । गुजरातमें भी अणहिलपुर घाटन, कि जहाँ भीहीरविजयसूरि जी बिराजते थे वहाँ गए । नगर में प्रवेश करने के समय भी जयविमल को बहुत कुछ अच्छे-शुन हुए । आचार्य श्रीहीरविजयसूरिजी के पाद पंकजमें नमस्कार करने के समय बड़े हर्ष पूर्वक जयविमल के मस्तकपर श्रीहीरविजयसूरिजी ने अपना हाथ स्थापन किया । इस लघुमुनि को देख कर समस्त मुनिमण्डल और शहर के लोगों को चित्तमें अपूर्व आनन्द अभिव्याप्त हो गया । सब लोग उनकी ओर देखने लगे । 'जयविमल' मुनि विनय पूर्वक श्रीहीरविजयसूरिजी से विद्या को ग्रहण करते हुए विचरने लगे ।

इधर भीविजयदानसूरिजी सुरत बन्दर से विहार करते हुए और अनेक जीवों को प्रतिबोध करते हुए 'श्रीवटपल्ली' नगरी में आए । यहाँ पर आपने अपना अंत समय जाना । संयमरूपी शिखर में ध्वजतुल्य, और पाप को नाश करने वाली आराधना को किया और अरिहंतादि चार शरणों का ध्यान करते हुए, और चार आहारों के त्याग रूप अनशन को करके श्रीविजयदानसूरीश्वर ने सं० १६२१ वैशाख शुक्ल द्वादशी के दिन देव लोक को भूषित किया । इस स्वर्गवासी सूरीश्वरकी भक्ति में लीन इस नगर के श्रीसंघने गुरुपादुका की स्थापना रूप एक स्तूप भी निर्माण किया ।

अब तपागच्छरूपी आकाश में हीरविजयसूरि रूपी सूर्य का प्रकाश फैलने लगा । सारे गच्छका कार्य आपही के शिर पर आपड़ा ।

एक समय में हीरविजयसूरि की इच्छा सूरिमंत्र की आराधना करने की हुई, विहार करते हुए आप 'डीसा' शहर में पधारे जहाँ बड़े आस्तिक और धर्म-प्रिय लोग रहते थे। इस नगर में साधुसमुदाय को पढ़ाने का, योग बहनादि क्रियाओं को कराने का और व्याख्यान इत्यादिके देने का कार्य भीजयविमल के ऊपर नियत करके भीहीरविजय सूरिजी ने त्रिमासिक सूरिमंत्र का ध्यान करना आरम्भ किया। एक दिन ध्यानारुढ़ सूरिमंत्र में तलालान सूरिजी को जान कर सूरिमंत्रका अद्भुत अधिष्ठायक देवता सूरिकी सामने उपस्थित हुवा और बोला " हे भगवन् ! आपकी पाट भीजयविमलगणि के योग्य है । " इस प्रकार की देव वाणी को सुन कर आचार्य बहुत प्रसन्न हुए। हीरविजयसूरि जी जब ध्यान से मुक्त हुए तब इन्होंने यही विचार किया कि-जय विमल नामके शिष्यशेखर को अपनी पाट पर स्थापन करना चाहिये। यह विचार आपने साधु-साध्वी-भावक-भाविका रूप चतुर्विध संघके समस्त सूचित किया। क्योंकि जब तक मानने वालों की रुचि और श्रद्धा न हो, तब तक भारीसे भारी पदवी हो तो भी उससे कुछ कार्य नहीं निकल सकता। प्राचीन काल में आज कलके समान नियम नहीं था कि चाहे कोई माने चाहे न माने, पर पदवी का विशेषण नाम में अवश्यही लगाया जाय गा। अब तो यह चाल है कि पदवीधर अपने को पदवीयोग्य समझता है बस वह लम्बे पद अपने नाम में लगा ही लेगा। चाह कोई उसकी माने या न माने। इससे बढ़ कर शोक की क्या बात होगी ? धन्य है ऐसे महात्माओं को कि जो सच्चे पदवी धर होने पर भी अपने को कभी आपसे 'मुनि' शब्द का विशेषण भी नहीं लगाते हैं।

हीर विजयसूरि जी के विचार का समस्त संघने सानंद अनु-

मोदन दिया । इसके बाद ' डीसा ' नगर से आपने शिष्यमण्डल के साथ विहार किया ।

जयसिंह मुनिने श्रीहीरविजयसूरिजी से स्व-परशास्त्र भी अपने स्वाधीन कर लिए । इन्होंने व्याकरण सम्बन्धी अनेक ग्रन्थ पढ़ने के साथ ही काव्यानुशासन-काव्यप्रकाश-वाग्भट्टालंकार-काव्यकल्पलता-छन्दानुशासन-वृत्तरत्नाकर आदि ग्रन्थों का भी अभ्यास किया । न्याय शास्त्र में स्याद्वादरत्नाकर- (यह ग्रन्थ अणहिलपुरपाटन में राजा सिद्धराज जयसिंह के समस्त ' कुमुदचन्द्र ' नाम के दिगम्बर आचार्य के साथ विवाद करके ' जयवाद ' प्राप्त करने वाले श्रीदेवसूरि ने बनाया है) अनेकान्त जयपताका-रत्नाकरात्रतारिका-प्रमाणमीमांसा न्यायावतार-स्याद्वादकलिका, एवं सम्मतितर्कादि जैन न्यायग्रन्थ तथा तत्त्वचिंतामणि-किरणावली-प्रशस्तपादभाष्य इत्यादि अन्य शास्त्रों का अभ्यास करके दिग्गज पाण्डित्य को प्राप्त किया । श्रीहीरविजयसूरि विहार करते हुए जब स्तम्भतीर्थ पधारे, तब नगर में रहती हुई एक ' पुनी ' नामकी भाविका ने बहुत द्रव्य का व्यय करके सुन्दर रचनापूर्वक श्रीजीनेश्वर भगवान् की प्रतिष्ठा करवाई । इस नगर के लोग ' जयविमल ' के पाण्डित्य को देख करके चकित होगये । ' योग्य पुरुषकी योग्यता पहचानना और योग्य का योग्य सत्कार करना, यह भी सज्जन लोग अपना परम धर्म समझते हैं । ' ' जयविमल ' की योग्यता को देख करके समस्त श्रीसंघने सूरिजी से प्रार्थना की कि- ' महाराज ! बड़ेविद्वान् तेजस्वी जयविमल मुनीश्वर को ' पण्डितपद ' प्रदान करना अच्छी बात है ' । ' इष्टं वैद्योपदिष्टं ' इस न्यायानुसार सूरेश्वर ने अपना विचार दृढ़ किया । इसके बाद सं० १६२६ मिति फाल्गुन शुक्ल दशमी के दिन त्यागी वैरागी और विद्वान् ' जयविमल ' को आपने ' पण्डित ' उपाधि से भूषित किया ।

कुछ दिन के पश्चात् स्तम्भतीर्थ से सूरेश्वर ने अपने शिष्य मण्डल के सहित विहार किया । और विहार करते हुए अहम्मदावाद आपहुंचे । अहमदावाद के समीपवर्ती अहम्मदपुर नाम के शाखापुर में आपने निर्विघ्नसे चातुर्मास समाप्त किया । एक दिन भीर्हीरविजय-सूरिजी रात्रि में पोरसी पढ़ाकर गच्छविषयक चिन्ता करते हुए सो गये । उस समय एक अधिष्ठायिक देव आकरके कहने लगा ' हेसूरेश्वर ! इस जयविमल परिडतको ' पट्टप्रदान ' करने में आपकी क्यों अनुत्सुकता मालूम होती है ? ' हे पूज्य ! यह पट्टधर श्रीमहावीर परमात्माकी पाटपरंपरा में एक ' दिवाकर ' होगा, इतने शब्द कह करके वह देव अदृश्य होगया ।

इसके पश्चात् बाचक-उपाध्याय-परिडत-गितार्थ प्रमुख समस्त-मुनिगण ने नमूता के साथ आचार्य महाराज से प्रार्थना की ' हेप्रभो ! श्रीसंघ की इच्छा श्रीजयविमल परिडत को ' आचार्य ' पद पर स्थापन करने की है । और वह इच्छा जैसे बने शांति कार्य में परिणत होनी चाहिये । ' देववाणी-संघवाणी और अपना अभिप्राय यह तीनों की ऐक्यता होने से आचार्य महाराज ने कहा " एवमस्तु ! " तदनन्तर अहम्मदावाद के श्रीसंघ के अत्याग्रह से, सूरिजीमहाराजने शहर में प्रवेश किया । प्रवेश होने के बाद ही ' आचार्य ' पदवी के निमित्त एक महोत्सव श्रीसंघकी तर्फ से आरम्भ हुआ । इस समय में इस नगर के नगर श्रेष्ठ, गृहस्थ धर्मप्रतिपालक, भेष्टी ' भीमूलचन्द्र ' ने विचार किया कि-न्यायोपार्जित द्रव्य के फल अर्द्धप्रतिष्ठा करना, जिनचैत्य, जिन पूजा, गुरुभक्ति और ज्ञानप्रभावना ही धर्मशास्त्रों में कहे हुए हैं । अतएव उन फलों को शक्यनुसार मुश्किलों भी प्राप्त करना योग्य है । मैंने भीशत्रुञ्जयतीर्थ में भीऋषभदेव भगवान के प्रसाद की दक्षिण और पश्चिम दिशा में एक चैत्य बनवाया

है । उसी प्रकार यह अवसर भी मुझे अपूर्व ही प्राप्त हुआ है । इस लिए इस कार्य में भी कुछ लक्ष्मी का व्यय करके योग्य फल प्राप्त करें । ऐसा अवसर पुनः नहीं प्राप्त होता है ।

जिस के अन्तःकरण में ही ऐसे भाव उत्पन्न हो गए, वो क्यों नहीं कर सकता है । इस श्रेष्ठीने इस समय में दान शालाएं खुलवा दी । स्वामीबात्सल्य करना आरंभ किया । मंगलगीत गाने वालों को बैठा दिया । बरघोडे निकालने आरंभ किए । कहां तक कहा जाय ? । इन्होंने बहुत द्रव्यों को लगा कर इस महोत्सव की अपूर्व शोभा बढ़ा दी । इस प्रकार के महोत्सव पूर्वक संवत् १६२८ मिति फाल्गुन शुक्ल सप्तमी के दिन शुभ मुहूर्त में 'जयविमल' की प्रथम उपाध्याय पद पर स्थापन करके तुरन्त ही 'आचार्य' पद दिया गया । इस नव सूरिका नाम श्रीहीरविजय सूरेश्वर ने 'श्रीविजयसेनसूरि' रक्खा । इस 'आचार्य' पदवी के समय में और भी बहुत से मुनिराजों को पदवीएं मिली । जैसे कि श्री विमलहर्ष परिडत को 'उपाध्याय' पद, पद्मसागर-लब्धिसागर आदि को 'परिडत' पद इत्यादि । इस महोत्सव पर उपस्थित समस्त देशों के लोगों को एक-एक रुपये की प्रभावना की गई, और याचक लोगों को भी द्रव्य-वस्त्रादि ले दान दिया गया ।

यह दोनों गुरु शिष्य (आचार्य) श्रीतपागच्छ रूपी शकट के प्रतिभाशाली चक्र को चलाने वाले हुए । आचार्य पदवी होने के बाद कुछ रोज तो आपका वहां ही रहना हुआ । तदन्तर लोगों को धर्मोपदेश देते हुए विचरने लगे । जिस समय में यह दोनों विद्वान् सूरि धर्मोपदेश करते हुए विचरने लगे, उस समय कुतूहियों का प्रचार अनेक स्थानों से उठ गया और उनकी स्वार्थ लीला की माहिमा अधिकांश में कम हो गयी ।

जिस समय में भीहीरविजयसूरीश्वरजी, भीविजयसेनसूरीश्वर के साथ में गुजरात देशमें विचरते थे । उस समय में एक अभूत पूर्व बात देखने में आई ।

लुम्पाकमतका अधिकारी मेघजी नाम का एक विद्वान् था , स्वयं शास्त्र देखने से जिन प्रतिमा को देख कर अपने अन्धत्व को दूर करने की वाञ्छा थी । भीहीरविजयसूरि प्रभृति इस बात को सुन करके बड़े हर्षित हुए । और इस बात को सुन करके भीविजयसेनसूरि इत्यादि पुनः अहम्मदाबाद पधारे । भीसूरीश्वरों के आने के बाद 'मेघजी' ऋषि अपने सत्ताइस परिडतों के साथ, भीसूरिजी के सन्मुख उपस्थित हुआ । लुपाक मतको त्याग करके भीसूरीश्वर के सत्योपदेश को उसने ग्रहण किया । सूरीश्वर ने इन 'मेघजी ऋषि' आदि की इच्छा से इन लोगों को बड़े महोत्सव के साथ नवीन शैलत्व में स्थापित किया । मेघजी ऋषि आदि श्रीआचार्य के साथ में शास्त्राध्ययन को करते हुए, बड़े विनयभाव से रहने लगे । इससे लोगों को और ही आनन्द होने लगा ।

कुछ समय के उपरान्त अहमदाबादसे विहार करके आचार्य-उपाध्याय-पंडित एवं मेघजी आदि समस्त मण्डल के साथ में विचरते हुए श्रीहीरविजयसूरिजी 'अणहिलपुर' पाटन आए । आपने चातुर्मास भी यहां ही किया । चातुर्मास समाप्त होने के बाद सं—१६३० मिति पोष कृष्ण चतुर्दशी के दिन अपने पाटधर भीविजयसेनसूरि को गच्छ की सारणा-वारणा-पडिचोयणा प्रदान अर्थात् गच्छ पेशवर्यके साम्राज्य की आज्ञा (अनुमति) दी । इस कार्य के ऊपर इस नगर के लोगोंने बड़ा भारी उत्सव किया । जिस अवसर पर मरु—मालव—मेदपाट—सौराष्ट्र—कच्छ—कोकण आदि देशों से हजारों लोक एकत्रित

हुए थे । श्रीविजयसेनसूरि गच्छ की समस्त अनुज्ञा अर्थात् गच्छ सम्बन्धी समस्त अधिकार प्राप्त करके और भी अधिक शोभायमान हुए । जिस समय हीरविजयसूरिजी ने विजयसेनसूरिको गच्छ संबन्धि अनुज्ञा दी उस समय में हीरविजयसूरिजी ने यही शब्द कहे “हे-महानुभाव ! इस गच्छका आधिपत्य और गच्छकी अनुज्ञा के साथ मैं तेरा संबन्ध हो” और आजन्मपर्यन्त गच्छ को तेरा वियोग कदापि न हो । विजयसेनसूरि के गच्छकी अनुज्ञा को प्राप्त करने के बाद चारित्र के मूल बीज रूप गच्छ की सम्पात्ति दिन प्रति-दिन बढ़ने लगी ।

एक दिवस गच्छ का पूर्ण प्रबन्ध निर्वाह करने में कुशल और सर्व प्रकार के विचार करने में समर्थ अपने शिष्य (आचार्य) को देख करके श्रीहीरविजयसूरि अपने मनो मन्दिर में विचार करने लगे कि यह विजयसेनसूरि यदि मेरेसे पृथक् बिहार करे तो बहुत देशों के भव्यों को पवित्र करने में भाग्यशाली बन सके और उसकी पदवी का गौरव भी बढ़ सके । इस प्रकार के विचार का निश्चय करके आपने भीविजयसेनसूरि को पृथक् बिहार करने की आज्ञा दी । इस आज्ञारूपी माला को अपने कण्ठ में धारण करके श्रीविजयसेनसूरि बिचरने लगे । बिचरते २ किसी रोज़ ‘चम्पनेर’ नगर को इन्होंने प्राप्त किया । इस नगर में एक ‘जयवंत’ नाम का श्रेष्ठ रहता था । इसने बहुत द्रव्य का व्यय करके श्रीविजयसेनसूरिके पास सं० १६३२ वैशाख शुक्ल त्रयोदशी के दिन प्रतिष्ठा करवाई ।

यहां से विहार करके सूरेश्वर ‘सुरतबन्दर’ आए । नगर के लोगों ने एक बड़ा प्रवेशोत्सव किया । चातुर्मास यहां ही किया । सूरेश्वर की कीर्ति चारों ओर फैल गई । यहांपर एक ‘भीभूषण’

नाम का पंडित रहता था । उसको सूरि महोदय की यह कीर्ति बड़ी असह्य हुई । एक दिन ऐसाही हुआ कि इस नगर के समस्त श्री-संघ तथा श्रीमिश्र आदि अनेक अन्यमतानुयायी पंडितों की सभा में श्रीविजयसेनसूरि का ' श्रीभूषण ' परिडत के साथ शास्त्रार्थ हुआ । कहना ही क्या है । शेर के सामने शृगाल कहां तक जोर कर सकता है ? थोड़े ही प्रश्नों-त्तरों में श्रीभूषण, परिडत, मूक हो-गए । आचार्य महाराज की विजय हुई । श्रीभूषण परिडत अनेक जैन परिडत और ब्राह्मण परिडतों की सभा में मूर्ख की तरह हँसी के पात्र हुए । श्रावक वर्ग एवं नगर के और २ लोगों ने श्रीविजय-सेनसूरि का अधिक सम्मान किया ।

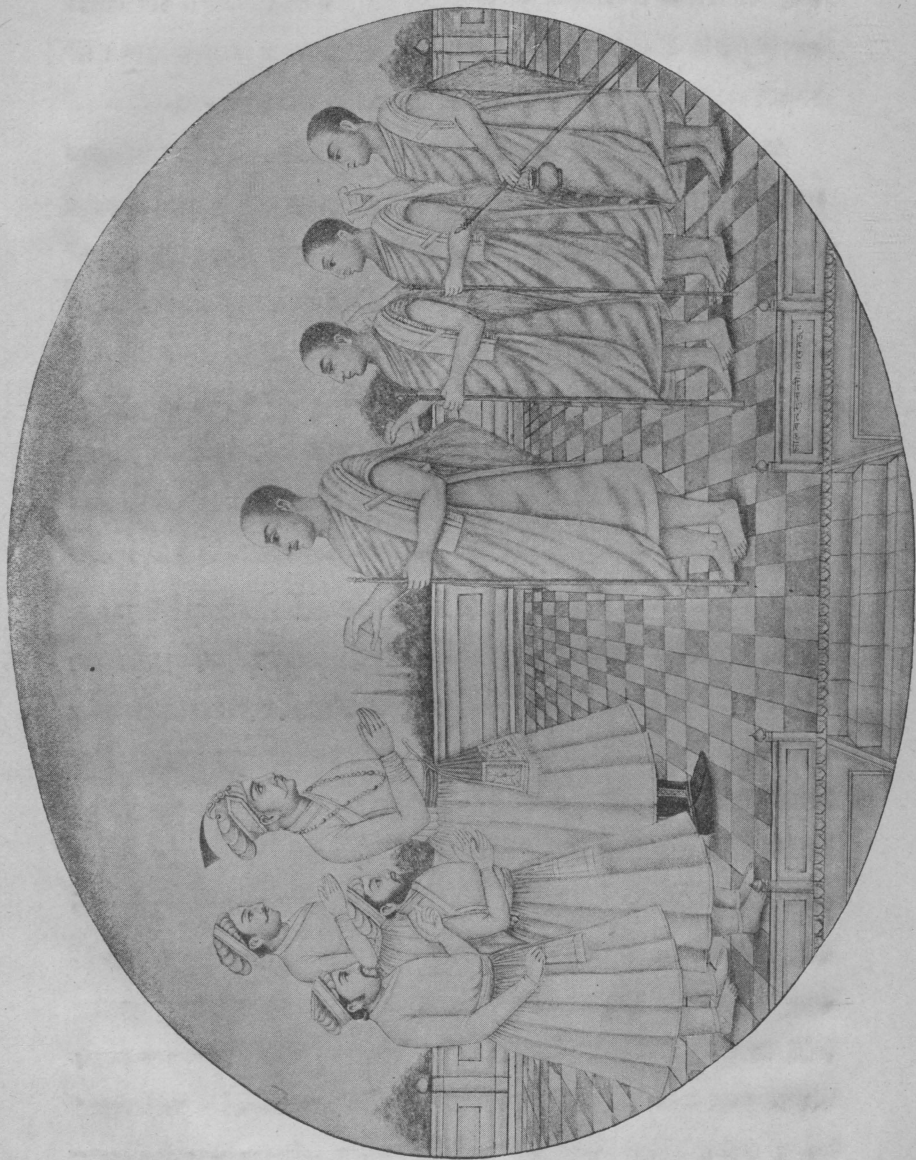
अब आप सुरत बन्दर में अनेक प्रकार से जैन धर्म की विजय पताका को फहराते हुए वहां से बिहार करके पृथ्वी तलको पावन करते हुए पुनः गुजरात के पत्तन नगर में पधारे और चातुर्मास यहां ही किया ।

पांचवा प्रकरण ।

—*—

(श्रीहीरविजयसूरि और अकबरबादशाह का समागम,
हीरविजयसूरि के उपदेश से अकबर बादशाह का
'अहिंसा' पर अनुराग होना और अपने राज्य
में बारह दिन हिंसा कोई न करे इस
प्रकार का फरमान पत्र लिखना
इत्यादि ।)

इस समय राजा अकबर, जो कि बड़ा प्रसिद्ध मोगल सम्राट् होगया, राज्य करता था । इसकी मुख्य राजधानी ' आग्रा ' नगर



जगद् गुरु श्री हीर विजय मुरि का अकबर बादशाह को धर्मोपदेश देना ।

में थी। लेकिन यह राजा अधिकतया 'फतेपुर' (सिकरी) में रहता था। राजा अकबर का राज्य चारों दिशाओं में फैला हुआ था। यह वही अकबर है जो कि हुमाऊ का पुत्र था। एक समय की वार्ता है कि अनेक राजाओं से नमन कराता हुआ यह अकबर बादशाह धर्माधर्म की परीक्षा करने लगा। जिससे परलोक की सम्पत्ति प्राप्त हो, उस प्रकार का पुण्य जिस मार्ग में हो उस मार्ग की परीक्षा करने में परीक्षक हुआ। इतना ही नहीं, किन्तु प्रत्येक दर्शन के धर्म गुरुओं से मिलना भी इसने आरम्भ किया। राजा अकबर बौद्धादि पाँच दर्शनों के धर्म गुरुओं से साक्षात् कर चुका, किन्तु अपने २ मतके अभिप्रायों का स्पष्ट रूप से स्थापित करके आत्मा का प्रियमार्ग बतानेवाला इन पाँचों दर्शनों के गुरुओं में से किसी को नहीं पाया। जब राजा ने कोई भी मनोज्ञ मुनिको यथार्थ रूप में नहीं देखा तब उदास होकर चुप बैठा।

एक दिन 'अतिमेतखान' नामक किसी पुरुष से राजाने सुना कि इस जगत् में मनोहर आकृति वाले, सत्यवचन को कहने वाले, महा बुद्धिमान, समस्त शास्त्र के पारगामी 'भीहीरबिजयसूरि' नामके मुनीन्द्र हैं। सूर्य की तरह वह भी एक प्रतिभाशाली पुरुष है। इस प्रकार की जब प्रशंसा सुनी तब राजा ने बड़े उत्साह से पूछा कि "वह इस बख्त कहां हैं?" अतिमेतखान ने कहा कि महाराज! वे सूर्येश्वर इस बख्त गुजरात देश में भव्यजीवों को मुक्ति मार्ग दिखा रहे हैं। इस प्रकार निष्कपट वचन सुन करके राजा बहुतही प्रसन्न हुआ। तदनन्तर राजाने भीहीरबिजयसूरेश्वर को बुलाने के लिए एक पत्र लिख कर अपने 'मेवड़ा' नामक मनुष्यों के हाथ 'अकमिपुर' में स्थित श्रीबखान नामक शाही के पास भेजा। उन्होंने जाना कि भीहीरबिजयसूरि इस समय गन्धारबन्दर में हैं।

ऐसा जान करके उन्हीं लोगों को वहाँ भेज दिया। जब यह लोग वहाँ पहुँचे तो उनके मुखसे राजा अकबर का बुलावा सुन कर सूरीश्वरादि सब कोई परमप्रसन्न हुए। राजा का पत्र पढ़ा। और इस के बाद सूरेश्वर ने वहाँ जाने का विचार निश्चय रखा।

चातुर्मास पूर्ण होने के पश्चात् मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी के दिन शुभ मुहूर्त में श्रीसूरेश्वर ने गन्धारबन्धर से बिहार किया। स्थान २ में, नगर २ में उत्तमोत्तम महोत्सवपूर्वक राजा-महाराजा-शेठ शाहूकार सभी से परम सन्मानित होते हुए और जिज्ञासुओं को संसार सागर से पार उतरने का मार्ग दिखाते हुए और स्वसमुदाय को ज्ञानाभ्यास कराते हुए, गुजरात, मेवाड़-मालवा आदि देशों में होकर श्रीमुनिराज श्रीफतेपुर (सीकरी), कि जहां अकबर बादशाह रहता था, वहाँ पधारे।

सं-१६३६ ज्येष्ठ कृष्ण त्रयोदशी के रोज प्रातःकाल में सूरेश्वर ने पुर प्रवेश किया। इस प्रवेशोत्सव के समय में लोगो ने बहुत कुछ दान किया। इन लोगों के दानों में 'मेडता' के रहने वाले 'सरदारांग' नामक श्रावक ने जो दान किया वो सबसे बड़ कर था। नगर प्रवेश के पश्चात् सूरेश्वर ने विचार किया कि—अब पहिले अकबर बादशाह से मिलना अच्छा है। राजा को मिलने का समय निश्चय करके सैद्धान्तिक शिरोमणि, वाचक श्रीविमल हर्ष गणि-अष्टावधान शतावधानादि शक्ति धारक वाचक श्रीशान्ति चन्द्रगणि-पण्डित सहजसागरगणि-परिडत सिंहविमलगणि—वक्तृत्व कवित्वकलावान् परिडत हेमविजयगणि-वैयाकरणचूडामणि परिडत लाभविजयगणि और गुरुप्रधान श्रीधनविजयगणि प्रमुख तेरह मुनि तथा श्रीथानसिंघसा-श्रीमानसिंघसा—कल्याणसा आदि अनेक श्राद्ध वर्ग को साथमें लेकर श्रीहीरविजयसूरेश्वर

भीमकव्वरवादशाह की राजसभा में पधारे। इन विद्वद्मण्डलीको देखते हुए सारी सभा हर्षित होगई। स्वयं अकव्वरवादशाह ने विनयपूर्वक सामने जाकर के सुस्वागत पूछने के साथ श्रीहीरविजय-सूरीश्वर के पादद्वय में नमस्कार किया । इस समय की शोभा को कौन वर्णन कर सकता है ? नमस्कार करने के समय में भीसूरीश्वरने, सकलसमृद्धि को देने वाली किन्तु यावत् मोक्षफल को देनेवाली ' धर्मलाभः ' इस प्रकार की आशिष देकरके राजा को सन्तुष्ट किया । (जैनमुनि लोग किसीको आशिष देते हैं तब ' धर्म-लाभोऽस्तु ' यही शब्द कहते हैं ।)

अकव्वरवादशाह की राजसभा में जिस समय हीरविजयसूरी जी पधारे और जब अकव्वरवादशाह की भेट हुई, उस समय क्या हुआ ? इस विषय में जगद्गुरु काव्य के प्रणेता एक श्लोक से कहते हैं कि:—

चंगा हो गुरुजीतिवाक्यचतुरो हस्ते निजं तत्करं
कृत्वा सूरि वरान्निनाय सदनान्तर्वस्त्ररुद्धाङ्गयो ।
तावच्छ्री गुरवस्तु पादकमलं नारोपयन्तस्तदा ।
वस्त्राग्यामुपरीति भूमिपतिना पृष्ठाः किमेतद् गुरो ॥

अकवरने पूछा—“गुरुजी ! चंगे ता हो ?” फिर उनका हाथ पकड़ कर उन्हें महलों के भीतर लेगया । और विछौने पर विठाना चाहा, परन्तु सूरीश्वरने वस्त्रासन पर पैर रखने से इनकार किया । इस पर अकवर को आश्चर्य हुआ । और सूरिमहोदय से उसने इसका कारण पूछा । जैन शास्त्रों में इस तरह बिस्तरे पर बैठने की आज्ञा नहीं है, इत्यादि बातें जब अकवरने सुनी तब उसे और भी आश्चर्य हुआ ।

अकव्वरवादशाह के नमस्कार करने के बाद, श्रेष्ठुर्जी-पाहुड़ी

और दानीआर नाम के तीन पुत्र एवं सभामें आए हुए समस्त लोगों ने भूमि स्पर्श करके नमस्कार किया । समस्त सभा के शान्त होने के बाद 'मेवड़ा' नामके एक पुरुषने सूर्येश्वर के आचारादि नियम जैसे कि—नित्य एक ही दफे आहार करना, सूर्य की विद्यमानता ही में विचरना, याचना किए हुए स्थान में निवास करना, एक महीने में कम से कम ६ उपवास अवश्य करना, आठ महीने भूमि पर सोरहना, गरम पानी पीना, इक्का-गाड़ी-आदि किसी वाहन में न बैठना, इत्यादि बहुत से नियम सुनाये । इस नियमों को सुनते ही लोगों के रोम हर्षित होगये ।

प्रिय पाठक ! क्याही आचार्य की आचारविशुद्धता थी ? शासन के रक्षक, प्रभावशाली और धुरंधर आचार्य होने पर इस प्रकार की उग्र तपस्या करना क्या आश्चर्यजनक नहीं है ? किन्तु यह कहना चाहिये कि उन महात्मा के अतःकरण में सम्पूर्ण वैराग्य भरा हुआ था । वह यह नहीं समझते थे कि अब हम आचार्य होगये हैं, अब तो हमें हरजगह शास्त्रार्थ करने पड़ेंगे । वादियों के साथ वाद बिवाद करने पड़ेंगे । इस लिए जीभर के पुष्ट पदार्थ रोज उड़ावें । किन्तु उन महात्मापुरुषों में इस प्रकार के स्वार्थ का लेश भी नहीं था । पाठक ! उनलोगों के रोम में वैराग्य भरा हुआ था । वह लोग जो उपदेश देते थे वह सच्चे भाव से देते थे और इसी लिए तो उनलोगों का उपदेश सफल होता था । उन लोगों का 'धर्मोपदेशो जनरञ्जनाय' ऐसा सिद्धान्त नहीं था । साथही साथ वह यह भी समझते थे कि यदि हम सच्चे आचार में नहीं रहेंगे । यदि हम जैसा उपदेश देते हैं वैसा बर्ताव नहीं करेंगे तो हमारी संतति कैसे सुधरेगी ? हमारी संतति पर कैसे अच्छा प्रभाव पड़ सकता है ?

इसके उपरान्त राजा और सूरिश्वर दोनों क्षमापति एकान्त स्थान में विचार करने को बैठे । इस अवस्थामें स्थिर बुद्धि होकर राजा ने भीहीरविजय सूरिश्वर से ईश्वर का स्वरूप पूछा । सूरिश्वरने भी वही गंभीरता के साथ परमात्मा का स्वरूप, जिस तरह सिद्धसेनदिवाकर-कलिकाल सर्वज्ञ भीहेमचन्द्राचार्य प्रभु आदि पूर्वाचार्यों ने वर्णन किया है उसके अनुसार आपने भी कथन कहकर राजा को समझाया । इस विवेचन को आदर पूर्वक सुनता हुआ राजा अत्यन्त तुष्टमान-प्रसन्न हुआ । इसके पश्चात् राजा ने अपने राज्य में रखे हुए जैनागम, (अंगोपांग-मूळसूत्रादि) तथा भागवत—महाभारत-पुराण-रामायणादि जो शैवशास्त्र थे वह सब भीसूरिश्वर को दिखलाए । और विनय पूर्वक कहा कि—“यह सब पुस्तकें आप ग्रहण करिये” । इस प्रकार के वाक्य कह कर वह ग्रंथ सूरिश्वर को भेंट करने लगा । राजा का बहुत आग्रह होने पर भी सूरिजी ने स्वीकार नहीं किये । तब राजाने त्याग किये हुए पुस्तकों में भी मुनिराज का निर्ममत्व देखकर अपने मनमें विचारा कि “अहो ! यह मुनिमतंगज पुस्तक को भी ग्रहण नहीं करते हैं तो मैं जो धन-काञ्चन देने को विचार कर रहा हूँ उन सब पदार्थों को यह कैसे ग्रहण करेंगे । ” जब पुस्तक सूरिश्वर ने नहीं ग्रहणकीं तब सब पुस्तकें अलग रखवादी अर्थात् राजा खुद इनसे मुक्त होगया । वह सब पुस्तकें ‘अकञ्जर बादशाह’ के नाम से आग्रा के एक भंडार में भेज दी गई ।

राजाने बड़े क्षमारोह के साथ सूरिश्वर को उपाश्रय में पहुँचाया । जब शाहीमन्दिर से विदा होकर मुनीपुङ्गव राजद्वार प्रतीक्षी में होते हुए चलने लगे, उस समय की शोभा को देख करके आस्तिक लोग मन में कहने लगे, क्या आज महावीर जन्म राशी

से 'भस्म' नामका दुर्ग्रह उतरा है ? । इस समय में राजा ने अनेक यज्ञकों को दान दिये । और गीत—वादित्र की भी सीमा नहीं रक्खी ।

कुछ काल 'फतेपुर' में ही रह करके वहां से विहार कर सूरेश्वर आगरा पधारे । आगरा बादशाह की राज्यधानी थी । चातुर्मास आपने आग्रे में ही किया । अकबर बादशाहने अपनी सभा में इन शब्दों में सूरेश्वर की प्रशंसा की कि " धर्मकर्त्तव्य रूप क्रिया में और सत्य भाषण करने में तत्पर ऐसे किसी अन्य मुनि को मैंने आज तक नहीं देखा है " आग्रे में रहे हुए गुरु महाराज की अद्भुत महिमा को सुन करके राजा अतीव हर्षित हुआ । उसने पर्युषणा पर्व के दिवसों में अपने राज्य में हुग्गी पिटवाकर यह आज्ञा प्रचारित करा दी कि प्रजा का कोई मनुष्य जीव हिंसा न करे ।

चातुर्मास समाप्त होनेपर कुशावर्त देशमें पधारकर 'शौर्यपुर' नगर में श्रीसूरिजी नेमीश्वर की यात्रा करने को चले । यात्रा करके पुनः आगरे में पधारे । यहां पर आपने श्री चिंतामणिपार्श्वनाथ की प्रतिष्ठा की । तदन्तर यहां से बिहार करके पुनः फतेपुर (सिकरी) पधारे । जहां कि अकबर बादशाह रहता था ।

गुरु महाराज का अपने नगर में आगमन सुन करके बादशाह अकबर बड़ा हर्षित हुआ और उसने मिलने की अभिलाषा प्रगट की । सूरेश्वर भी पुनः राजाको धर्मोपदेश देने को उत्सुक हुए । जब राजाने सूरेश्वर को बुलाने के लिये आदमी भेजे तब सामान्य मुनियों को उपाश्रय में ही रख करके केवल सात बिद्वानों को साथ में लेकर मुनिराज राज दरबार में पधारे । इस समय सूरेश्वर ने बहुत प्रसन्न होकर राजा को उपदेश दिया । इस उपदेश का यहां

तक प्रभाव पड़ा कि:-राजाने अपने राज्य में बारह दिन तक (भावण वदी १० से भादों सुदी ६ तक) समस्त जीवों को अभयदान देने का फरमान पत्र लिख दिया और इस फरमान पत्र का प्रचार अपने कर्मचारियों से सारे राज्य में करा दिया ।

अकबर के इस फरमान का अनुवाद मालकन साहब ने अपनी पुस्तक में दिया है । हम ज्यों का त्यों प्रकाशित करते हैं:—

“IN THE NAME OF GOD. GOD IS GREAT.

“ FIRMAN OF THE EMPEROR JALALODEN MAH-
OMED AKBAR SHAH, PADSHA, GHAZEE.

“ Be it known to the Moottasuddies of Malwa, that as the whole of our desires consist in the performance of good actions, and our virtuous intentions are constantly directed to one object that of delighting and gaining the hearts of our subjects, etc.

“ We on hearing mention made of persons of any religion or faith, whatever, who pass their lives in sanctity, employ their time in spiritual devotion, and are alone intent on the contemplation of the Deity, shut our eyes on the external forms of their worship, and considering only the intention of their hearts, we feel a powerful inclination to admit them to our association, from a wish to do what may be acceptable to the Deity. On this account, having heard of the extraordinary holiness and of the severe penances performed by Hirbujisoor and his disciples, who reside in Guzerat, and are lately come from thence, we have ordered them to the presence, and they have been ennobled by having permission to kiss the abode of honour.

“ After having received their dismissal and leave to proceed to their own country, they made the

following request:— That if the King, protector of the poor, would issue orders that during the twelve days of the month Bhodon, called Putechoossur [which are held by the Jains to be particularly holy], no cattle should be slaughtered in the cities where their tribe reside, they would thereby be exalted in the eyes of the world, the lives of a number of living animals would be spared, and the actions of His Majesty would be acceptable to God; and as the persons who made this request come from a distance, and their wishes were not at variance with the ordinances of our religion, but on the contrary were similar in effect with those good works prescribed by the venerable and holy Mussalman, we consented, and gave orders that during those twelve days called Putechoossur, no animal should be slaughtered.

“ The present Sunnud is to endure for ever, and all are enjoined to obey it, and use their endeavours that no one is molested in the performance of his religious ceremonies.

Dated the 7th. Jumad-ul-Sani, 992, Hijirah

इसके उपरान्त सूरेश्वर के उपदेशसे कारागार से कैदी लोगों को छोड़ दिया । तथा दड़ पञ्जर से पक्षी समूहों को भी छोड़ दिया । राजा ने सूरेश्वर के सामने यह भी कहा कि इस भूमि में जहां तक मेरा आधिपत्य है वहां तक कोई पुरुष मीन मकरादि जलचर प्राणियों को भी नहीं मारेगा । यह कहकर राजा ने ‘ सीकरी ’ के पास ‘ डाबर ’ नामका सरोवर जो कि तीन योजन प्रमाण का था, बंद करवाया । इस सरोवर से राजा को बहुत द्रव्य की आमदनी होती थी ।

उपर्युक्त वारह दिनके सिवाय 'नवरोज का दिन'—'रविवार का दिन' 'फरबरदिन महिने के पहिले अठारह दिन' 'अबीज महिना सारा' इत्यादि दिनों में भी कोई हिंसा न करे, ऐसा फरमान पत्र अपने राज्यमें प्रचार किया था। तथा इस समयमें राजा ने श्रीहीरविजयसूरि जी को 'जगद्गुरु' ऐसी उपाधि दी थी। यह सब बातें ग्रन्थान्तरों से ज्ञात होती हैं।

इस प्रकार बहुत से कार्यों को कराते हुए श्रीसूरेश्वर ने इस साल का चातुर्मास फतेपुर में ही किया। यहांपर चातुर्मास करने से बादशाह को भी बहुत कुछ लाभ की प्राप्ति हुई।

छठवां प्रकरण ।

—४:४—

(विजयसेनसूरि व उनके शिष्यका खरतरगच्छ वालों से शास्त्रार्थ, खरतरगच्छ वालों का पराजय होना और राजा खानखान से विजय सेनसूरिकी मुलाकात—इत्यादि)

इधर पूज्यपाद श्रीविजयसेन सूरेश्वरजी भ्रमर की तरह ग्राम-जुग्राम बिचरते हुए, दो चातुर्मास अन्यत्र करके तृतीय चातुर्मास पत्तन में करने की इच्छा से सं-१६४२ के वर्ष में पुनः 'पत्तन' नगर में आए। यहाँ आने के बाद वाचक धर्मसागर के बनाए हुए "अवधन परीक्षा" में खरतरगच्छ वालों से सूरेश्वर का शास्त्रार्थ हुआ। यह

विवाद लगातार चौदहरोज तक राजा की सभामें होता रहा। अन्तमें चौदवें दिन सूरिशेखर श्रीविजयसेनसूरि का जय और खरतरगच्छ के वाचक का पराजय हुआ। खरतरगच्छ वाले बड़े रुष्ट होगए।

इस शास्त्रार्थ में खरतरगच्छ वालों की जब दाल न गली तब अहमदाबाद जाकर के कल्याणराज नामक एक नृपाधिकारी का अभय लेकर खरतरगच्छ वालों ने भीविजयसेनसूरि के एक शिष्य के साथ में बड़ा भारी बिबाद उठाया । यह बिबाद भी 'खान खान' नामक महाराजेंद्र की सभा में सामन्तादिक राजलोक तथा नगर के बड़े २ लोगों के सामने हुआ । इस बिबाद में भी अनेक शास्त्रों में प्रवीण, बुद्धिमान और तेजस्वी शिष्य ने कल्याणराज का और औष्टिक मतके अनुयायी संघ का बिध्नम दूर करदिया । इस प्रकार जय को प्राप्त करने वाले मुनि का बड़ा सत्कार किया और बड़ी जयधनि के साथ सब शास्त्र धूम धाम से अपने स्थान पर लाए गए । जैसे जल में तेलका बिंदु फैल जाता है, उसी तरह यह जय ध्वनि चारों ओर फैल गई । रबि के उदयसे कोक पक्षी तो आनंदित होता है । किन्तु उलूक को तो अप्रीति ही होती है । एवं रीत्या इस जैन शासन की उन्नति से तपगच्छीय भीक्षु को तो बड़ा आनंद हुआ किन्तु अन्य कुतूहियों को बड़ाही हार्दिक कष्ट हुआ । इस जय ध्वनिने जब हमारे भीविजयसेनसूरीश्वर के कर्ण में प्रवेश किया, तब इस सूरीश्वर का अन्तःकरण बड़ाही प्रसन्न हुआ । आपने शीघ्र अहमदाबाद आने का विचार किया और पत्तननगर से बिहार करके लोगों को उपदेश देते हुए आप थोड़े ही दिनों में अहमदाबाद पधारे ।

आपके आगमन से नगरके समस्त लोग आनंदित हुए । लोगों ने शहर के सम्पूर्ण मार्ग में अच्छी २ सजावटें कीं । बड़ी धूमधाम के साथ सूरीश्वर का प्रवेशोत्सव किया । इस प्रवेशोत्सव में राजा ने भी हाथी, घोड़े, रथ आदि बहुतसी सामग्री सामिल की । इस अभूतपूर्व बरघोड़े के साथ भीविजयसेनसूरीश्वर ने नगर के स-

मस्त लोगों को दर्शन देते हुए उपाश्रय को अलंकृत किया । भ्रातृ वर्ग की स्त्रियों ने सुवर्ण की चौकियों पर हीरा मणिक, मोती इत्यादि के साथीय और नंदावर्त बनाकरके बड़ी भद्धा से सूर्यश्वर की पूजा की । भ्रातृ वर्ग ने अतुल द्रव्य का व्यय करके ज्ञान पूजा प्रभावना इत्यादि किए । श्रीसंघ में स्वामी वात्सल्य होने लगे । सूर्यश्वर की धर्मदेशना से हजारों लोग कर्मक्षय करने लगे और सूर्यश्वर के प्रताप से इनकी कीर्ति भी चारों ओर फैल गई ।

इस कीर्ति को सुन कर श्रीखानखान राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ और श्रीसूर्यश्वरमहाराज के दर्शन करने की उसकी प्रबल इच्छा हुई । उसने आदर सत्कार के साथ अपने सेवकों को भेज कर सूर्यश्वर को राजसभा में बुलाये । सूर्यश्वर भी अपने विद्वान् शिष्यों को साथ लेकर सभा में पधारे । वहां जाकर सूर्यजीने समयोचित श्रीसर्वज्ञभाषित धर्मप्रकाश किया । इस धर्मोपदेश को सुनते ही सारी सभा प्रसन्न होगई । और धर्मोपदेश को सुनकर राजा को यही कहना पड़ा कि “ इस कलियुग में यदि कोई धर्म मार्ग प्रशस्य है तो यही मार्ग है जो श्रीसूर्यश्वरजीने प्रकाश किया है ” । राजा के मुखविंद से इस प्रकार के वचन निकलने से श्रीसूर्यश्वर की महिमा की कोई सीमा ही नरही । राजा के अत्याग्रह से सूर्यश्वर ने इस सालका चातुर्मास इस राजनगर में ही किया । इससे राजा के मन में बहुत ही गौरव उत्पन्न हुआ ।

सातवाँ प्रकरण ।

— ❦ —

(श्रीविजयदेवसूरि का जन्म, दीक्षा, विजयसेनसूरि की कीहुई प्रतिष्ठायें तथा हीरविजयसूरि और विजयसेन सूरि का समागम ।)

राजदेश नामक देशके भूषण समान ' इलादुर्ग ' (इडर) नामकी नगरी में एक ' स्थिरा ' नामका भेष्टी रहता था । इस भेष्टी की एक 'रुपाई' नामकी भार्या थी जो बड़ी सुशीला एवं पतिभ्रता थी । इस पतिप्राणा अवला के गर्भ से सं० १६३४मिति पौषशुक्ला त्रयोदशी के दिन एक प्रतिभाशाली और उत्तमगुण सम्पन्न बालक का जन्म हुआ । माता पिता ने बड़े समारोह के साथ इस बालक का नाम ' वास ' रक्खा । बालक क्रमशः बाल्यपन को त्याग करके जब बड़ा हुआ तब एक दिन उसके पिता का अन्तर्धानादि करके सुसमाधिपूर्वक देहान्त होगया ।

पिता के देहान्त होजाने के बाद इस बैराग्यवान् बालक ने अपनी माता से कहाः—मैं शिवसुख को देनेवाली दीक्षा को ग्रहण करने की इत्कट इच्छा रखता हूं, अतएव आप मुझे आश्वा दीजिए । ” पुत्र के इस वदता के बचनों को सुन करके माता ने यह कहा कि “ हेनन्दन ! मैं भी तेरे साथ मैं वही मोक्षसुख को देनेवाली दीक्षा ग्रहण करूंगी । अपने को अनुमति देने के साथ स्वयं माता का दीक्षा लेने का विचार सुनकर पुत्र और भी अधिक आनन्दित हुआ । माता ने यही विचार कि जैसे रत्न जो होता है वह सुवर्ण के साथ ही में शोभा को धारण कर सकता है । वैसे यह मेरा पुत्र भी जब गुरु की सेवा में रहेगा तब ही योग्यता को प्राप्त करेगा । वस ! यही विचार का निश्चय करके माता अपने पुत्र के साथ इलादुर्ग (इडर) से चलकर

अहमदाबाद को गई जहाँ कि भीविजयसेनसूरि विराजते थे । इस पुत्र की 'सौम्याकृति' और विस्तीर्णलोचन आदि उत्तम चिन्हों को देख कर सूरिश्वर ने मन में विचार किया कि यह बालक भविष्य में समस्त संघ को संतोष करने वाला होगा । जब सूरिश्वर ने यह भी सुना कि माता के साथ में यह बालक भी दीक्षा लेने वाला है, तब तो कहना ही क्या था ? सारे संघ में आनन्द फैल गया । इसके बाद सूरिश्वर ने शुभमुहूर्त में सं-१६४३ मिति माघ शुक्ल दशमी के दिन माता और पुत्र दोनों को दीक्षा दी । सूरिश्वर ने इस दीक्षित मुनिका नाम 'विद्या-विजय' रक्खा ।

पाठक इस बातका विचार कर सकते हैं कि इस नववर्ष के बालक के अन्तःकरण में दीक्षा लेने का विचार होना और माता का आशीर्वाद देना कैसी आश्चर्य की बात है ? क्या यह बातें सिवाय पूर्व जन्म के संस्कार के हो सकती है ? कभी नहीं ?

छोटी ही अवस्था में मुनि विद्या विजयने निष्कण्ठ होकर, वही विनय पूर्वक गुरु महाराज से विद्याभ्यास कर लिया । दीक्षा हो जाने के बाद यहाँ पर एक 'आदिधर्मे' नाम की भाविका रहती थी । उस के घरमें फैलानुन शुक्ल एकादशी के रोज सूरिश्वर ने जिनबिंब की प्रतिष्ठा की । इस समय में गन्धारबन्दर से 'इन्द्रजी' नाम के श्रेष्ठ आचार्य को वन्दना करने को आये थे । इन्होंने सूरिजी से विनति की कि 'भीमहावीरस्वामी की प्रतिष्ठा करवा करके मैं अपने जन्म को सफल करना चाहता हूँ । अतएव आप अपने चरण कमल से गन्धार बन्दर को पवित्र करिए' । इस विनति को स्वीकार करके अहमदाबाद से बिहार करके भीविजयसेनसूरि गन्धारबन्दर में पधारे । यहाँ पर पधार करके आपने दो प्रतिष्ठाएँ की । एक सं० १६४३ मिति ज्येष्ठ शुक्ल दशमी के दिन 'इन्द्रजी' श्रेष्ठ के घर में

महाबीर स्वामी की और दूसरी ज्येष्ठ कृष्ण एकादशी के दिन 'धनार्ई' नाम की श्राविका के मन्दिर में । सूरेश्वर ने चातुर्मास स्तम्भ तीर्थही में किया ।

अब इधर श्रीहीरविजयसूरीश्वर ने अनुक्रम से आग्रा-फतेपुर-अमिरामाबाद और आग्रा इस तरह चार चातुर्मास करके इधर मरु देश को पवित्र करते हुए 'फलोधी' तीर्थ की यात्रा करके श्री नागपुरमें पधारे । और वहाँ ही चातुर्मास किया । चातुर्मास समाप्त होने के बाद श्रीसूरीश्वरने गुजरात जाने का विचार किया । जब गुजरात में विचरते हुए श्रीविजयसेनसूरिजी ने यह बात सुनी कि गुरु वर्ग गुजरात पधारते हैं तब वह अत्यन्त खुश हुए और गुरु वर्ग के सामने जाने को प्रस्तुत हुए । श्रीविजयसेनसूरि आदि मुनीश्वरों ने 'शिरोही' आकरके श्रीहीरविजय सूरिजी के दर्शन करके अपनी आत्मा को कृतार्थ किया । शिरोही में यह दोनों धुरंधर आचार्यों के पधारने से लोगों को बहुतही लाभ हुआ । कुछ काल शिरोही में गुरु वर्गकी सेवा में रह करके बाद गुरुआज्ञा रूप माला को कण्ठ में धारण करके श्रीविजयसेनसूरीश्वर ने शिरोहीसे विहार किया । और पृथ्वीतल को पावन करते हुए आप वजीआराजी नामक भाई के वहाँ अर्हत् प्रतिष्ठा करने के लिये स्तम्भतीर्थ पधारे ।

गन्धार बन्दर में 'आलङ्ग' नामक श्रेष्ठी के कुल में 'वजीआ' तथा 'राजीआ' नामक दो भाइ बड़े धर्मात्मा रहते थे । वह दोनों प्रेमी बन्धु गन्धार बन्दर से अंभात गये । एक दिवस देववसात् इन दोनों भाइयों ने अंभात में आ करके देव भाक्ति—गुरु भाक्ति—स्वामि वात्सल्य—तथा अन्य प्रकार के दान करके बहुत द्रव्यका व्यय किया । यहां पर इन लोगोंने ऐसे उत्तमोत्तम कार्य किये कि जिससे इन दोनों की कीर्ति देश—देशान्तर्षों में फैल गई ।

जिसका सविस्तर वर्णन करना लेखनी की शक्ति से बाहर है । इसके अनन्तर राजा अकबरबादशाह की राजसभा में और फर्रंग के राजा की राजसभा में भी इनके गुणगान होने लगे । इन दोनों महानुभावों ने धर्म—अर्थ—काम इन तीनों पुरुषार्थों को अपने आधीन कर लिया ।

एक रोज निष्पाप—निष्कपट स्वभाव युक्त यह दोनों भाइयों में विचार करने लगे कि—अपने द्रव्य से देव-गुरु कृपा से सब कुछ कार्य हुए । अब जिन भवन में जिन बिंबकी प्रतिष्ठा करानी चाहिये । क्योंकि जिन भवन में जिन प्रतिमा को स्थापन कराने से जो फल उत्पन्न होता है उस पुण्यरूपी पुष्प से मुक्ति का सुख मिलता है । यह विचार करके जिन बिंब की प्रतिष्ठा कराने के लिये एक बड़े भारी उत्सव और बड़ी धूमधाम के साथ सं० १६४५ मिति ज्येष्ठ शुक्ल द्वादशी के दिन उत्तम मुहूर्त में श्रीविजयनसेनसूरीश्वर के हाथ से श्रीचिन्तामणि पार्श्वनाथ तथा श्रीमहावीर स्वामी की प्रतिष्ठा करवाई । सप्तफण्णधर इस चिन्तामणि पार्श्वनाथ की प्रतिमा ४१ अंगुल की रखी । इस प्रतिमा का चमत्कार चारों ओर फैलने लगा । क्यों कि प्रत्येक पुरुष को मनोकामना इस प्रतिमा के प्रभाव से पूरी होती थी । इसके पश्चात् यहां पर इन दोनों महानुभावों ने एक पार्श्वनाथ प्रभुका मंदिर भी बनवाया । इस मंदिर में बारह स्तंभ, छद्मद्वार और सात देवकुलिका स्थापित की गई । इस मंदिर में सब मिला करके २५ जिन बिंब स्थापन करवाये । सब से बड़ कर बात तो यह हुई कि इस मंदिर में चढ़ने—उतरने की २५ तो शि-
कीर्ण रखवाई थीं ! मूल प्रतिहार में एक बाजू में ३७ अंगुल प्रमाण वाली श्रीआदीश्वर भगवानकी प्रतिमा और दूसरी बाजू में ३३ अंगुल प्रमाण वाली श्रीमहावीर स्वामी की प्रतिमा बिराजमान

की गई । इस प्रकार इस मनोहर-रम्य मंदिर में भीजिनेश्वरों की
 श्रीविजय सेनसूरीश्वरने प्रतिष्ठा की ।

आठवां प्रकरण ।

—:०:—

(अकबर बादशाह का श्रीशत्रुंजयतीर्थ करमाचन
 पूर्वक फरमान पत्र देना । श्रीविजयसेनसूरि को
 बुलाना । श्रीविजयसेनसूरि का लाहौर प्रति
 गमनमार्गमें अनेक राजाओंसे सम्मानित
 होना और सुखशांति से लाहौर
 पहुंचना । इत्यादि)

अब श्रीविजयसेनसूरि गन्धार बन्दर से बिहार करके अपने
 गुरु श्रीहीरविजयसूरि जी के पास आया । इन दोनों आचार्यों ने
 सं० १६४६ की साल का चातुर्मास राजधन्यपुर (राधनपुर) में
 किया । यहांपर एक दिन श्रीहीरविजयसूरि जी के पास लाहौर से
 अकबर बादशाह का पत्र आया । उसमें उन्होंने ने यह लिख भेजा
 कि:-“ अबसे इस तीर्थ का कर मेरे राज्य में कोई नहीं लेगा । इस
 प्रकार का मैंने निश्चय किया है । अब आपका पवित्र शत्रुंजयतीर्थ
 आपको कर मोचन पूर्वक देने में आता है ” । इस तरह लिखकर
 साथही साथ यह भी राजा ने लिखा कि:-“ आप मेरे ऊपर कृपा
 करके अपने पट्टधर को यहांपर भेजिये । क्योंकि जब मैंने पहिले
 आपके दर्शन किए तब से मैं पुण्य से पवित्र हुआ हूं । अब आप
 कृपा करके अपना कोई विद्वान् शिष्य मेरे पास भेजिये ” इस पत्र
 को पढ़कर बड़े बिचार पूर्वक आपने श्रीविजयसेनसूरिजी से कहा

कि " हेस्वच्छात्मन् । भीष्मकवर बादशाह को मिलने के लिये तू जा । इस राजा की भूमि में स्थिति को फैलाते हुए हम लोगों को उनकी आज्ञा शुभ फलकी देने वाली है । " इस वचनों को सुनतेही भीविजयसेनसूरि ने कहा ' जैसी पूज्य की आज्ञा ! ' । बस ! आपने अकबर बादशाह के पास जाने का विचार निश्चय किया । और सं० १६४६ मार्गशिर्ष शुक्ल तृतीया को शुभ मुहूर्त में भीहीरविजयसूरि जी को नमस्कार करके आपने ढाभपुर (ताड़ौर) के प्रति प्रयाण भी किया ।

मार्ग में चलते हुए पहिले आप पतन (पाटण) पधारे । यहां पर भावक लोगों ने बड़ा उत्सव किया । यहां के सब मंदिरों के दर्शन करके क्रमशः देलवाड़ा आदि तीर्थों की यात्रा करते हुए ' शिवपुरी ' पधारे । यहांपर ' सुरत्राण ' नामक राजा रहता था । सूरेश्वर का आगमन सुनकर राजा ने अपनी ' शिरोही ' नगरी बहुत ही शुशोमित की । और बड़ी भक्तिके साथ दो कोश तक अगमानी करने गया । राजा ने सूरेश्वर का बड़े सत्कार के साथ पुर प्रवेश करवाया । यहां पर कुछ दिन स्थिरता करके सूरि जी आगे बढ़े । क्रमशः विचरते हुए और भव्य जीवों को उपदेश देते हुए ' भीनारदपुरी ' (जोकि अपनी जन्म भूमि थी) में पधारे । चाहे जैसे मनुष्य हो और चाहे जैसा जन्म भूमि वाला ग्राम हो, जन्म भूमि में जाने से सबको आनंद होता है । क्योंकि ' जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ' यह लोकोक्ति संसार में प्रचलित है । सूरिजी को भी यहां आने से बहुत आनंद हुआ । यहांपर सूरिजीने पूर्वावस्था के संम्बन्धि समूह के आग्रह से कुछ समय निवास किया । यहां के लोगों ने बहुत द्रव्य खरचा करके सूरिजी के उपदेश से शासन की प्रभावना की । यहां से विहार करके आप मेदिनीपुर (मेड़ता)

पधारे । यहां के राजा ने भी सूरिजी का बड़ा सत्कार किया । यहां के बैराट नगर—महिम नगर आदि नगरों में होते हुए और घमोंप-देश देते हुए लाहौर से ६ कोश दूर 'लुधियाना' में पधारे । यह समाचार लाहौर में प्रसिद्ध होगया कि भीविजयसेनसूरिजी लोधि-झाना पधारे हैं, तब भीमकबर बादशाह के मंत्रियों का अधिपति 'शेख' का भाई 'फयजी' (जोकि दशहजार सेनाका सेनाधिपति था), वह और अनेक लोग गुरु महाराज के दर्शन करने को वहांपर जा पहुंचे । यहांपर समस्त लोगों के सामने फयजी—सेनाधिपति के आग्रह से गुरु महाराज के शिष्य भीनन्दिविजय नाम के मुनि ने अष्टावधान साधन किए । इस चमत्कार को देख करके सब लोग चकित होगए । इस चमत्कार से चमत्कृत होता हुआ शेख का भाई फयजी अकबर बादशाह के सामने जाकर कहने लगा " हे राजेश्वर ! भीहीरविजयसूरि लाभपुर में पधारते हैं । अब थोड़ीही दूर हैं । यह सूरिजी भी गुणों के एक मात्र भण्डारही हैं इनके शिष्य भी बड़ी २ कलाओं को जानने वाले हैं । इव महात्माओं में नन्दिविजय नामके मुनि अद्भुत हैं ।

इस प्रकार की तारीफ को सुनतेही राजा मुनिजी के दर्शन करने को उत्सुक हुआ । सूरेश्वर ने अपनी शिष्यमण्डली के साथ आते हुए 'पञ्चक्रोशी' बनको प्राप्त किया । जहां की राजा का महल था । वहां पहिले परिहृत सुरचंद्रगणिके शिष्य भीमानुचन्द्र नामके उपाध्यायको भीहीरविजयसूरिने राजाके साथमें धर्म गोष्ठी के लिये बैठाया । इस पञ्चक्रोशी वनमें भानुचन्द्र उपाध्याय सामने आए । राजाने अपने नगर निवासियों के साथ हाथी, घोड़े, पयदल आदि सेना और अपने मंत्री वर्गको भी भेजकर सूरेश्वरका बहुत सत्कार किया । इस धूमधाम के साथ सूरिजीने लाहौर शहरके प्राङ्ग

एक 'गंज' नामक शाखापुर में निवास किया । इसके पश्चात् अष्टावधानी को देखने की इच्छा से राजाने सूरिश्वर के शिष्यों को अपनी पास बुलाए । गुरु महाराज की आज्ञानुसार श्रीनन्दिविजयादि साधु राजा की राजसभा में गये । इस सभामें श्रीनन्दिविजय मुनिने आश्चर्यकारा—अद्भुत अष्टावधान को साधन किये । इस चमत्कारी विद्या को देख करके सब लोग मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करने लगे, यहां तक कि स्वयं बादशाह भी अपने मुख को न रोक सका ।

इसके बाद ज्येष्ठ शुक्ल द्वादशी के दिन राजा ने बड़े उत्सव के साथ श्रीसूरिश्वर को नगर प्रवेश करवाया । राजा ने हमारे सूरिश्वर को 'सबजलफजल' नामक प्रसिद्ध नियोमी के मकान में निवास करवाया । इसके बाद राजा ने श्रीसूरिश्वर को अपनी बैठक में बुलाने के लिये अपने मंत्रियों को भेजा । सूरिश्वर अपना गौरव और धर्म का गौरव समझ करके राजा के मकान में पधारे । राजा ने बड़ी नम्रता के साथ श्रीसूरिजी से पूछा कि " हे गुरुवः ! आपके शरीर में और आपके शिष्य मण्डल में अच्छी तरह कुशल संगत सुख शान्ति है ? हे महाराज ! श्रीहीरबिजयसुरि जी कौन देश में ? कौन नगर में विद्यमान है । वे भी सुख शान्ति से जगत् का उद्धार करने में कटिबद्ध हैं ? वे महात्मा जी वर्तमान कौन २ कार्य में प्रवृत्त है ? कृपाकर मुझे सब हाल सुनाइये ।

तदन्तर सुरिजी ने बड़े मधुर स्वरसे कहा:-हे राजन् ! आपके अनुभाव से भूवल्लय में रहते हुए हमें सब प्रकार से सुख शान्ति प्राप्त है । हे महानुभाव ! इस जगत में आपके शासनकाळ में समस्त प्रकार के भय नष्ट हुए हैं । अतएव आपके प्रभाव से सबको शान्ति प्राप्त है । सुरि पुङ्गव, गुरुवर्य श्रीहीरबिजयसूरिश्वर जी व-

वर्तमान समय में गुजरात देश में बिराजते हैं । वे दयालु महाराज ज्ञान-ध्यान-तप-जप और समाधि से श्रीपरमेश्वर की उपासना करते हैं । हे राजेश्वर ! आपकी समस्त धर्मानुयायियों के ऊपर प्रिय दृष्टि को देखकर तथा आपका समस्त स्थानों में आधिपत्य जानकर श्रीहीरविजयसूरि जी महाराज ने आप को 'धर्मढाभ' रूप आशिष दी है । हे भूपाल ! सकल धर्म की माता 'दया' है । समस्त पुण्यों में मुनिओं के मनकी करुणाही अभीष्ट है । अतएव समस्त धर्माचरण में 'दया' का ही प्रधान्य है । हे राजन् ! इस प्रकार की कृपा-दया ने वर्तमान समय में समस्त जगत् को व्याप्त किया है । हे भूप ! यह आपकी बहु व्यापक 'दया' से "गुरुवर्य बहुत प्रसन्न हैं । वे गुरुवर्य जी स्वयं भी दयाके भण्डार हैं । आपकी दया उनको अभिलषित है । जिस प्रकार धर्म का मूल दया है वही प्रकार दयाके मूल आप हैं । आपका ऐसा महत्व विचारकर सूरेश्वर जी आपके कल्याणामिलाषी हैं अर्थात् आपके ऐसे धर्मात्मा राजा का कल्याण हो यही हमारे गुरुवर्य की मनो कामना है ।

इन बचनों को सुनती हुई सारी सभा अतीव हर्षित होगई । और सब अपने अंतःकरण में यही विचार करने लगे कि-अहो ! इस चतुर पुरुष का कैसा बचन चातुर्य है ? ।

इसके पश्चात् राजाने कहा कि- 'हे सूरेश्वर ! आज की सभा की यह इच्छा है कि-श्रीनन्दिविजय मुनीश्वर पहिले दिखाए हुए अष्टावधान को साधन करे, तो बहुत अच्छी बात है ' । सूरिजी ने शीघ्र अपने शिष्य को आज्ञा दी । नन्दिविजय मुनिने अष्टावधान साधन किये । इस चमत्कारक विद्या से सारी सभा और राजा प्रसन्न होगए । और सम्पूर्ण सभा के सामने इस मुनि घरको 'खु-

शफहम' शब्दका विशेषण देकर उनकी अत्यन्त प्रशंसा की। इस समय राजा की अनेक सामग्री के साथ लोगों ने बड़ा उत्सव किया। एवं रीत्या राजसभा में बड़े सम्मान को प्राप्त करके श्री-विजयसेनसूरि अपने शिष्य मण्डल के साथ उपाभय में पधारे। आर्य वर्ग ने आज से एक अठाई महोत्सव प्रारम्भ किया। इस अपूर्व शासन प्रभावना को देखकर अन्यदर्शनी लोग जैनों का एक छत्र राज्य मानने लगे।

नववां प्रकरण

— ४३ —

(ब्राह्मणों के कहने से राजाका भ्रमित होना, श्रीविजय-
सेनसूरिके उपदेशसे राजा का भ्रम दूर होना ।

‘ईश्वर’का सच्चास्वरूप प्रकाश करना और सूरिजी
के उपदेशसे बड़े २ छ कार्योंका बन्द
करना)

इस प्रकार सूरिजी का और राजा का प्रगाढ़ प्रेम दिन परदिन बढ़ने लगा। सूरिजी की महिमा भी बढ़ने लगी। इस जैन धर्मकी महिमा को नहीं सहन करने वाला एक ब्राह्मण एक दिन राजा के पास जा कर बोला:—

“हे महाराज, ये जैन लोग, पाप पुञ्ज को हरण करने वाला-अगत् को बनाने वाला—निरंजन—निराकार—निष्पाप—निष्परिग्रह आदि गुण विशिष्ट ‘ईश्वर’ को मानते नहीं है। और जब वे लोग ईश्वरही को नहीं मानते हैं तो फिर उन का धर्म मार्ग क्या ही है। क्योंकि अगद्विश्वर की सत्तारहित होकर ये लोग जो कुछ

सुकृता धारण करते हैं वह सब निष्फल ही है। अतएव आप जैसे राजराजेश्वर के लिये जैनों का मार्ग कल्याणकारी नहीं है।”

कस ! ब्रह्माण् देवताके इस वचन से ही राजा को बड़ा क्रोध हुआ। एक दिन सूर्येश्वर राज सभामें आए, तब राजाने क्रोधको अपने अन्तःकरण में रक्खा और ऊपर से शान्ति रख करके सूर्येश्वरसे कहा “हे सूर्यजी लोग कहते हैं कि ये आपकी जो कियापें हैं वे सब लोगों को प्रत्यय कराने वाली हैं। मनुशुद्धि को करने वाली नहीं हैं। अतएव इसके निमित्त से समस्त प्राणिओं को ठगने वाले ये महात्मा हैं। क्योंकि ईश्वर को तो मानते नहीं है।” हे गुरु धर्म ! इस प्रकारकी मेरे मनकी शंका आप के वचनामृत से नाश होनी चाहिये।”

बादशाह का यह वचन सुनते ही सूर्येश्वर समझ गए कि— राजाकी स्वयं यह कोपाग्नि नहीं है, किन्तु ब्रह्म देवता की यह फैलाई हुई माया है। अस्तु। सूर्येश्वर ने राजा से कहा—हे राजन् ! हमलोग जिस प्रकार से ईश्वर का स्वरूप मानते हैं, उस प्रकार से और किसी मतमें ईश्वर का स्वरूप देखा नहीं जाता है। जरा सावधान हो करके आप सुनिप। “जिस ईश्वर के हर्ष-पीयूष से भरपूर नेत्र शान्त-रसाधिक्य को छोड़ते नहीं हैं। जिस का वदन, समस्त जगत् को परमप्रमोद रूप—सम्पत्तिको देता है। जो प्रभु अश्व—भेष-मयूरादि किसि वाहन पर बैठते नहीं है। जिस को मित्र पुत्र कलत्रादि कोई भी परिग्रह नहीं है। जिस ईश्वर को तिन जगत् में भूत-भविष्यत् और वर्तमान वस्तु का प्रकाश करने वाला ज्ञान सर्वदा पूर्णरूप से विद्यमान है। जिस ईश्वर को काम-क्रोध-मोह-मान-माया-लोभ-निद्रा आदि दूषण हैं ही नहीं। जिसके ज्ञान-गुणोत्कर्ष के आगे सूर्य भी एक खद्योतकी उपमा है। जिस प्रभुका

ज्ञानालिशय जीवों के अंतःकरण में प्रगट होकर आज्ञान रूपी अन्ध-कार को नाश करता है । पुनः जो ईश्वर जन्म-जरा-मरण-आधि-व्याधि-उपाधि से रहित है । जो ईश्वर स्त्री पुरुष-शत्रु-मित्र-रंका-राय-शेठ-शाहुकार-सुख-दुःख इत्यादि में सर्वदा समान मन वाला है अर्थात् समभाव ही को धारण करता है । जिस को शब्द-रूप-रस-गन्ध और स्पर्श रूप पांचो प्रकार के विषयों का अभाव है । जिसने उन्मादादि पांचो प्रमाद को जीत लिया है । और जो ईश्वर अठारह दोषों से रहित है । इस प्रकार के चिदात्मा अचिंत्य स्वरूप-परमात्मा-ईश्वर को हम मानते हैं । हे राजन् ! जिस अधर्म ब्राह्मण ने आप को कहा है कि—जैन दर्शन में परमेश्वर का स्वीकार नहीं किया है । वह सर्वथा असत्यलापी है । क्या उस ब्राह्मण ने 'हनुमान नाटक' का यह निम्न लिखित श्लोक नहीं पढ़ा है:—

यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो ।

बौद्धाः बुद्ध इति प्रमाणापटवः कर्मेति मिमांसकाः ॥

अर्हन्निन्त्यथ जैनशासनरताः कर्त्तेति नैयायिकाः ।

सोयं वो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः॥१॥

अर्थात्—परमात्मा को शैव लोग 'शिव' कह करके उपासना करते हैं । वेदान्ती लोग 'ब्रह्म' शब्द से । प्रमाण में पट्ट बौद्ध लोग 'बुद्ध' शब्द से । मिमांसक लोग 'कर्म' शब्द से । जैन शासन में रत जैन लोग 'अर्हन्' शब्द से तथा नैयायिक लोग 'कर्ता' शब्द से व्यवहार करते हैं । वही त्रैलोक्य का स्वामी परमात्मा तुम लोगों को वाञ्छित फल देने वाला है ।

इस श्लोक से यह बात सुस्पष्ट मालूम हो जाती है कि 'जैन' लोग परमात्मा को मानते हैं ।

हे राजन् ! वह परमेश्वर जिसको हम अर्हन् शब्द से पुकारते हैं, वह दो प्रकार के स्वरूपों में स्थित है। पहिले तो तीर्थंकर सम्बन्धन में स्थित होते हुए और ज्ञानादि लक्ष्मी के स्थाय भूत विचरते हुए हैं। इस समयमें भगवान को चोतीस अतिशय और चाणी के पैंतीस गुण होते हैं। (सूरीश्वर ने इनका भी स्वरूप समझाया।)

दूसरे प्रकार में अर्थात् दूसरी अवस्था वाले देवका स्वरूप इस तरह है। वह परमात्मा जिसकी आत्मा संसार से उच्छिन्न है, जो सर्वदा चिन्मय और ज्ञानमय है। इसका कारण यह है कि उस अवस्था में उसके पांच प्रकार के शरीरों में से कोई भी नहीं है। इसके अतिरिक्त वह ईश्वर अनुपम है अर्थात् जिसकी उपमा देने के लिये कोई वस्तु ही नहीं है तथा जो नित्य है। ऐसे देव को हम मानते हैं। समुच्चय रूपसे कहा जाय तो अठारह दूषणों के रहित देव को हम मानते हैं—अठारह दूषण ये हैं:—

अन्तरायं दान-लाभ-वीर्य-भोगोपभोगाः ।

हासो रत्यरती भीतिर्जुगुप्सा शोक एव च ॥१॥

कामो मिथ्यात्वमज्ञानं निद्रा च विरतिस्तथा ।

रागो द्वेषश्च नो दोषास्तेषामष्टादशाप्यमी ॥२॥

दानान्तराय, लाभान्तराय, वीर्यान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय, हास्य, राति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा, काम, मिथ्यात्व, अज्ञान, निद्रा, अविरति, राग और द्वेष यह अठारह दूषणों का ईश्वर में अभाव है।

हे राजन् ! अब आपको विश्वास हुआ होगा कि जैनी लोग जिस प्रकार ईश्वर को मानते उस प्रकार और कोई भी नहीं मानते हैं। किन्तु अन्य लोग व्यर्थ ईश्वर मानने का दावा करते हैं।

ईश्वर को मान करके इसपर अनेक प्रकार का बोझा डाल देना या ईश्वर को मान करके उसके विचित्र प्रकार के स्वरूप बताकर कलङ्कित करना यह क्या ईश्वर को मानना है ? नहीं । कदापि नहीं । यह भक्तों का काम नहीं है । यह काम तो कुमकों का है ।

इस प्रकार बड़े विस्तार से ईश्वर का स्वरूप सुनतेही राजा का चित्त निःसंशय होगया । और अन्य वादियों के मुँह उतर गये । इस सभा में सूरिजी की जय होगई । सूरिजी ने बादशाह के सन्मुख ब्राह्मणों को सूक बनाकर यश स्तंभ गाड़ दिया । इसके बाद बादशाह स स्तुति के भाजन होकर सूरेश्वर अपनी शिष्य मण्डल के साथ उपाश्रय में पधारे ।

इस समय में सूरेश्वर ने वाचक पद का नन्दिमहोत्सव करवाया, जिसमें अकबर बादशाह के अबजलफयज नामक मंत्री ने अधिक द्रव्य का व्यय किया । सूरेश्वर ने अकबर बादशाह के साथ भ्रमचर्चा करने ही में दिवस व्यतीत किए ।

अब एक दिन राजा परम प्रसन्न चित्त बैठा था । राजा का चित्त बड़ाही प्रसन्न था । इस समय में सूरेश्वर ने राजा से कहा कि:— हेनृपेश्वर ! आप पृथ्वीपाल हैं । जगत् के सब जीवों की रक्षा करने का दावा रखते हैं । तथापि गो, वृषभ, महीष, महिषी की जो हिंसा आपके राज्य में होती है वह हमें आनन्ददायक नहीं है । अर्थात् जगत् का उपकार करने वाले निरपराधी जीवों की हिंसा करना कदापि योग्य नहीं है । दूसरी बात यह कि आप जैसे सार्वभौम-सौम्य राजा को मृत मनुष्यद्रव्य ग्रहण करना तथा मनुष्य बांधों जाय तब उसका द्रव्य लेलेना यह भी आप की कीर्ति के लिए योग्य नहीं है । अर्थात् ये काम आपकी कीर्ति को हानि पहुंचाने वाले हैं । अत एव हे राजन् ! उपर्युक्त कार्य आप

के लिए उचित नहीं मालूम होते हैं। क्योंकि आपने बहुत द्रव्य की उत्पत्ति के कारणभूत 'दाण' और 'जीजीआ' नामका कर त्याग दिया है तो फिर उपर्युक्त कार्यों में आपको क्या विशेष चिन्ता हो सकती है।

सूरिजीने दिखलाये हुए उपर्युक्त छ कार्य राजाकी तुष्टि को करने वाले हुए। राजा ने अपने अधिकारी देशों में उपर्युक्त छ कार्य बन्द करने की सूचना के आज्ञा पत्र सम्पूर्ण राज्य में भेजवा दिए।

मकबर बादशाह के आग्रह से सूरिजी ने इस साल का चा-तुर्मास तो लाहौर ही में किया। जैसे २ आचार्य महाराज के साथ में बादशाह का विशेष समागम होता गया तैसे २ बादशाह के अंतःकरण में विशेष रूपसे 'दया भाव' प्रगट होता गया। जैसे चन्द्रकी विद्यमानता में आकाश सुशोभित होता है, वैसे श्री-सुरीश्वर की विद्यमानता में लाभपुर (लाहौर) शहर बहुतही दे-दीप्यमान होता रहा। श्रीविजयसेनसूरि ने बादशाह की सभा में ३६३ बादिओं को परास्त किया। तथा बादशाह ने प्रसन्न होकर श्रीविजयसेनसूरि को 'सवाई' का खिताब दिया। यह बातें ग्रन्थान्तर्ग से ज्ञात होती हैं।

दशवां प्रकरण ।

—४४—

(श्रीहीरविजयसूरिजी की सिद्धगिरि की यात्रा, वहाँ से आकर उन्नतनगर में दो चातुर्मास करना, विजयसेनसूरि का पट्टन आना, हीरविजयसूरि का स्वर्गमन और श्रीविजयसेनसूरि का विलाप ।)

इधर जब श्रीविजयसेनसूरि लाहौर में विराजते थे, उस समय में श्रीहीरविजयसूरि पाटन में चातुर्मास करके सकल दुःखों को ध्वंस करने वाली श्रीशत्रुंजयतीर्थ की यात्रा करने को उत्सुक हुए । चातुर्मास समाप्त होने पर बहुत साधु के समुदायसे वेष्टित भीसूरीश्वर सिद्धगिरि (शत्रुंजय) पधारे । इस समय में सूरिजीके साथ बहुत देशों के श्रीसंघ भी आएथे, जिन्होंने नानाप्रकार के द्रव्यों से शासन की प्रभावनायें कीं और देवगुरुभक्ति में सदा तत्पर रहे ।

तीर्थाधिराज की यात्रा करने के समय पहिले पहल त्रिलोक के नाथ श्रीऋषभदेव भगवान् को तीन प्रदक्षिणा देते हुए आपने मन्त्र-वचन और काया से स्तुति की । यात्रा करने को आए हुए संघ ने भी अतुच्छ द्रव्य से पूजा प्रभावना करके पुण्य उपार्जन कर लिया । यहां पर थोड़े ही रोज रह करके भीसूरीश्वर ने यहां से अन्य स्थान को विहार किया ।

उन्नतपुरी के श्रीसंघ के आग्रह से आपका उन्नतपुरी में आना हुआ । इस नगर में धर्म का लाभ अधिक समझ कर आपने चातुर्मास भी यहां ही किया । खेद का विषय इस समय यह हुआ कि यहां पर आपके शरीर में किसी असाध्य रोगने प्रवेश किया और इससे आपको यहां पर चातुर्मास भी करना पड़ा ।

इधर हमारे श्रीविजयसेनसूरि लाहौर से बिहार करने को उत्कण्ठित हुए । यहाँ पर आपने बहुत वादियों से जय प्राप्त किया, फिर यहाँ से बिहार करके पृथ्वीतल को पावन करते हुए आप 'महिमनगर' पधारे । आपने यहाँ चातुर्मास किया । इस अवसर पर आपके पास उन्नतपुरी से एक पत्र आया । उसमें यह लिखा गयाथा कि- 'परमपूज्य श्रीहीरविजयसूरि महाराज के शरीर में व्याधि है, और आप जल्दी यहाँ आइए ।' पत्रको पढ़ते ही सब मुनिमण्डल के अन्तःकरणों में बड़ा दुःख उत्पन्न हुआ । बस ! शीघ्रही यहाँ से सब लोग उन्नतपुरी को प्रस्थानित हुए । मार्ग में छोटे बड़े शहरों में लोग बड़े-उत्सव करने लगे । क्योंकि आप अकबरवादशाह को प्रतिबोध करके बहुत से अच्छे २ कार्य करके आते थे । बहुत दिन व्यतीत होने पर आप पत्तन (पाटन) नगर में पधारे ।

इधर उन्नत नगर में प्रभु श्रीहीरविजयसूरिजीने जाना कि अब मेरा अन्त समय है । ऐसा समझ करके आपने चौरासी लक्ष जीव योनिके साथ क्षमापना और चार शरण रूप, चारित्र्य धर्म रूप सुन्दर गृहकी ध्वजा की उपमा को धारण करने वाली, क्रिया करती । संलेखना और तपके निर्माण से अपनी आत्मा को क्षीण बल जान करके श्रीहीरविजयसूरिजी ने अपने सब मुनिमण्डल और भद्रालु भावकों को एकत्रित किए । सबके इकट्ठे होने पर आपने अन्तिम उपदेश यह दिया किः—

हे भद्रालु मुनिगण ! थोड़े ही समय में मेरी मृत्यु होने वाली है । इस मृत्यु से मुझे किसी बात की चिंता नहीं है । क्योंकि इस मरण का भय नाश करने के लिये तीर्थंकर जैसे भी समर्थ नहीं हुए । कहा भी है कि—

तित्थयरा गयाहारी सुरवइयो चकिकेसवा रामा ।

संहरिआ ह्यविहिआ का गयाया इयर लोगायां ?॥१॥

अर्थात्—तीर्थंकर, गणधर, देवता चक्रवर्ती, केशव, राम आदि, सभी इस प्रकार मृत्यु को प्राप्त हुए तब इतर लोगों का कहना ही क्या है ?

जब ऐसी ही अवस्था है तो फिर क्यों मुझे दुःख हो ?

हे मुनिगण ! इस संयम की आराधना में भी आप लोगों को किसी तरह की चिंता नहीं है । क्योंकि पट्टधर भीविजयसेन-सूरि मेरे स्थान पर मौजूद हैं । धीर, वीर, गंभीर भीविजयसेनसूरि तुम्हारे जैसे परिदत्तों के द्वारा मुख्य कर सेवनीय है । (इस अवसर पर समस्त साधुओं ने 'तहसि-तहसि' करके इस आज्ञा को शिर पर धारण किया) । हे मुनिगण ! भीविजयसेन सूरिकी आज्ञा को मानते हुए सब कोई प्रेम भाव से रहकर परमात्मा वीर के शासन की उन्नति करने में कटिबद्ध रहना ।”

बस ! सब साधुओं को इस प्रकार हितशिक्षा दे करके अनशन करने की इच्छा करते हुए सूरिश्वरने कहा कि—“महर्षिओं का यही मार्ग है कि आयुष्य के अन्त में भवदुःखको नाश करने वाला अनशन करे” साधु लोग मना करने लगे और दुःखी होने लगे तब पुनः सूरिजी ने कहा कि—“हे महाभागण ! मोक्ष के हेतुभूत कृत्य में आप लोग बाधा मत डालो” इत्यादि वचनों से, अपने शिष्य मण्डल के आग्रह का निवारण करके आप अनशन करने को प्रस्तुत होगए ।

इस क्रिया को देखते हुए शिष्य लोगमें से कई लोग मूर्च्छित होने लगे । कई लोग कल्पांत करने लगे । सूरिश्वर ने शिष्यों के कल्पांत को हटा करके भीषण परमेष्ठिकी साक्षी से अतिउत्सुकता

के साथ घनशन कर लिया । इस समय में भाद्र वर्ग ने जो महोत्सव किया उसका वर्णन इस लिखनी से होना असम्भव है ।

इसके पश्चात् मोक्ष सुख को देने वाला नमस्कार (नवकार) मंत्र का ध्यान करते हुए, मन-वचन-काया से किये हुए पापों की निंदा करते हुए, प्राणि मात्रमें मैत्री भावको धारण करते हुए, शरीर का भी ममत्व को त्याग करते हुए श्रीहीरविजयसूरीश्वर ने सं-१६५२ मिते भाद्रपद शुक्ल एकादशी के दिन इस भवसंबंधी मलीन शरीर को त्याग करके देवयोनि का मनोज्ञ शरीर धारण किया ।

अब श्रीहीरविजयसूरिजी इस लोक से चले गए । आपने देव लोक को भूषित किया । श्रीसूरीश्वर का देहान्त होने पर इस नगर के समस्त संघने इस मृत शरीर को अनेक प्रकार के चन्दनादि सुगन्धित पदार्थों से विलेपन किया । एक विशाला-नामक शिविका को बना करके उसमें उस मृत शरीर को स्थापन किया । शोक चित्त वाले हजारों मनुष्यों ने संस्कार भूमि में ले जा कर चन्दनादि काष्ठ से उस शरीर का अग्नि संस्कार किया ।

इसके उपरान्त इस उन्नत नगर से श्रीसूरीश्वर स्वर्ग गमन के समाचार पत्र ग्राम ग्राम भेजे गये—जब पाटन नगर में श्रीविजयसेन सूरीजी के पास यह दुःख दायक समाचार आया और जब वे उसे पढ़ने लगे तो उनका हृदय अकस्मात् भर आया । सब साधुमण्डल बड़ा दुःखी हुआ । पवित्र गुरु महाराज के विरह से खेदकी सीमा रही नहीं । हमारे श्रीविजयसेनसूरिजी सखेद गद् गद् वाणी से बोलने लगे:-

“ हे तात । हे कुलीन ! हे अभिजात ! हे ईश ! हे प्रभो ! आप मुझ से बार २ यह कहते थे कि 'तू मेरे हृदय में है' यह

सब 'अजागलस्तनवत्' हो गया । हे प्रभो ! मैं लाहौर से ऐसा समझ करके निकला था कि 'गुरु वर्ध के चरण कमल में जाकर सेवा करूंगा । परन्तु हे नाथ आपने तो जरासा भी विळंब नहीं किया । हे स्वामिन् ! आप के मुख कमल के आगे रहने से—आप के चरणार्विन्द में रहने से मेरी जो शोभा थी वह शोभा अब आपके विरह से 'गगनवल्ली' के समान होगई ।

हे भगवन् ! अब आपके बिना मैं किसके प्रति महाराज साहेब ! महाराज साहेब ! कहता हुआ विद्याभ्यासी बनूंगा । हे निर्ममेश ! आपके मुख कमल को देखने से मुझे जो रति होती थी वह रति हे प्रभो ! अब किस तरह होगी ? हे प्रभो ! 'तू जा ' 'तू कह' 'तू आव' 'तू भण' इत्यादि आप के कोमल बच्चों से मेरा अंतःकरण जो फूल जाता था अब वह आनंद मुझे कैसे प्राप्त होगा ? और उस कोमल शब्दों से मुझे कौन पुकारेगा ? हे प्रभो ! अब आपकी आज्ञा के अभाव में मैं किसकी आज्ञा को अपने मस्तक पर धारण करूंगा ? हे स्वामिन् ! आप के अस्त होनेसे अब कुपाक्षिक लोग बिचारे भव्य जीवों के अंतःकरण में अपने संस्कारों का प्रवेश कराकर अन्धकार को फैला देंगे । हे प्रभो ! आप जैसे प्रकाशमय स्वामी के अभाव में हमारे भरतक्षेत्र के लोग अब किस पवित्र पुरुष को अपने अंतःकरण में स्थापन करके प्रकाशित होंगे । हे गुरुवर्य ! जैसे कल्पवृक्ष समस्त जनको सुखकर है । वैसे आपका और अकबर बादशाह का संग समस्त जगत को लाभ दायक था । क्या ! अब आपके विरह से प्रजा को वह सुख फिर कभी भी होने वाला है ? हे कृपानाथ ! आपने कृपारूपी सुन्दरी के साथ अकबर बादशाह की शादी करादी है किन्तु उस दम्पती की जोड़ बिरह रहित न रहो, यही मैं चाहता हूँ । हे गुरो ! आपकी कीर्तिलता

जब तक सूर्य चन्द्रमा का प्रकाश है तब तक संसार में रहेगी । क्योंकि आपके वाणी रूप प्रदीप से सोद्यम होकर भीष्मकवर बा-
इशाह ने श्रीशत्रुंजयतीर्थ जैनों के हस्तगत किया है । हे विभो !
दीपक के अस्त होने से अन्धकार फैल जाता है वैसे आप जैसे
सूर्य के अस्त होने से अब कुमति लोग अपने अन्धकार को फै-
लावेंगे । यही मुझे दुःख है । हे पितः ! आपका उत्कृष्ट चास्त्रि—
आपकी संयम आराधना, सचमुच निवृत्ति पदको ही देने वाली
थी । तथापि आप देवगत हुए । इसका कारण इस कलिकाल की
महिमा ही है ।

हे प्रभो ! 'तप-जप-संयम-ब्रह्मचर्य इत्यादि मोक्ष कृत्य है' ।
'साधु धर्म मुझे बहुत प्रिय मालूम होते हैं' इत्यादि, जो आप क-
हते थे वह सब व्यर्थ होगया । क्योंकि आप तो स्वर्ग में चले गए ।
यदि आपको तपादि प्रिय ही थे तो स्वर्ग में क्यों आप पधारे । हे
मुनीन्द्र ! जो कोई आपका नाम स्मरण करता है । जो व्यक्ति आ-
पका ध्यान करता है उनको आप साक्षात् हैं । आप उसी प्रकार
अद्भुतलुवर्ग के लिये प्रत्यक्ष हैं जैसे मित्र के लेखाक्षरों को देखकर
लोग उसका मिलना प्रत्यक्ष समझते हैं ।

इस प्रकार बहुत विलाप करके भीविजयसेनसूरि शान्त हुए ।
और फिर महात्मा पुरुष ने आत्म-सत्त्व को निवेदन करते हुए
शोक को भी शान्त किया ।

श्रीहीरविजयसूरि जी के देहान्त होने से भीतपगच्छ का स-
मस्त कार्य भीविजयसेनसूरिही के शिरपर आपड़ा । दिन प्रति दिन
भीगच्छ की शोभा श्रीहीरविजयसूरि के समय ही की तरह बढ़ने
लगी । मिथ्यात्वियों का जोर जरा भी नहीं बढ़ सका । जैनधर्म की
विजय पताका बड़ी जोर से फहराती ही रही और श्रीहीरविजय-

सूरि में जैन शासन की प्रभुता रूप जो लक्ष्मी थी वही श्रीविजय-
सेनसूरि ने प्राप्त की ।

ग्यारहवां प्रकरण ।

(श्रीविजयसेनसूरि की कीहुई प्रतिष्ठाएं । तीर्थयात्राएं । भूमि में
से श्रीपार्श्वनाथ प्रभू का प्रगट होना । श्रीविद्याविजय (वि-
जयदेवसूरि) को आचार्यपद एवं भिन्न २ मुनिराजों
को भिन्न २ पद प्रदान होना इत्यादि) ।

अब भीतपगच्छ रूपी आकाश में सूर्य समान श्रीविजयसेन-
सूरि भव्य जीवों को उपदेश देते हुए विचरने लगे । श्रीपक्ष्म न-
गर से विहार करके स्तम्भ तीर्थ (खंभात) के लोगों के निवेदन से
आपका खंभात आना हुआ । यहांपर आपका एक चातुर्मास हुआ ।
खंभात से विहार करके आप अहमदाबाद पधारे । यहां के लोगों
ने बड़ा उत्सव किया । सुना—चांदी के द्रव्यसे सूरेश्वर की पूजा
की । यहां एक ' भोटक ' नामक भावक, जोकि बड़ा भ्रष्टावान था,
रहता था । इस महानुभाव ने बड़े उत्सव के साथ श्रीसूरेश्वर के
हाथ से जिन बिंब की प्रतिष्ठा करवाई । इस प्रतिष्ठा के समय में
सूरिजी ने पं० लब्धिसागर मुनि को उपाध्याय पद प्रदान किया ।
यहांपर एक ' वच्छा ' नामक जौहरी ने भी सूरेश्वर द्वारा जिन
बिंब की प्रतिष्ठा करवाई । इन प्रतिष्ठाओं के अतिरिक्त पंचमहाव्रत
अणुव्रत ब्रह्मव्रत आरोपणादि बहुत से शुभकार्य सूरेश्वरने यहांपर
किए । यहांपर सूरिजी के चातुर्मास करने से सारे नगर के लोगों
को आनंद का अपूर्व लाभ हुआ । इस समय का सम्पूर्ण वृत्तान्त

कहने के निमित्त एक बड़े ग्रंथ की आवश्यकता है । सारांश यह कि यह वर्ष भी ऐसा हुआ कि जिससे सारे देश के लोग परम प्रसन्न रहे । अहमदाबाद शहर में ही चातुर्मास समाप्त करके आप कृष्णापुर (कालुपुर) पधारे ।

एक दिन कालुपुर में बिराजते हुए सूर्यश्वर ने परम्परा से यह बात सुनी कि:-“ शहर में ‘ ढोंकु ’ नामक पाटक (पाडे) में भीर्चितामणि पार्श्वनाथ भगवान किसीने भूमि में स्थापन किए हुए हैं” । लोगों की इच्छा प्रभु को बाहर निकालने की हुई । लेकिन राजाज्ञा के बिना कैसे निकाल सकते थे ? इस समय अहमदाबाद में काजी हुसेनादि रहते थे । इनसे मुलाकात करके भीसूर्यश्वरने भीप्रभु को बाहर निकालने की आज्ञा दी।” इसके बाद सं० १६५४ में शिष्ट पुरुष को स्वप्न देकरके भीप्रभु चिंतामणिपार्श्वनाथ प्रभु प्रगट हुए । प्रभु के प्रगट होने से चारों ओर आनन्द छागया । भगवान् के दर्शन से लोगों की इष्टसिद्धिएं होने लगी । इस प्रतिमा को भीसंघने सिकन्दरपुर में बड़े कत्तब के साथ स्थापन किया ।

एक दिवस भीसूरिजी अपने शिष्यमण्डल के साथ भीपार्श्वनाथ प्रभु के मन्दिर में पधारे और इन्होंने जो प्रभुकी स्तुति की । इसका थोड़ासा उल्लेख यहां पर किया जाता है ।

“ जिसका नाम स्मरण करने से श्वास-भगन्दर-इलेष्म और क्षयादि रोग नाश होजाते हैं । ऐसे पार्श्वनाथ प्रभु रक्षा करो ।

‘ जिसका नाम स्मरण करने से समस्त प्रकार के चोर भाग जाते हैं ऐसे पार्श्वनाथ प्रभु रक्षा करो ।

“ जिसका नाम स्मरण करने से युद्ध में जय होता है, जिसके नाम स्मरण से भरी प्राणी भय से छूट जाते हैं, जिसका नाम

स्मरण करने से अपत्य रहित पुरुष भी अद्भुत पुत्र की प्राप्ति करता है-ऐसे पार्श्वनाथ प्रभु रक्षा करो ।

“ जिसका नाम स्मरण करने वाला पुरुष अनेक प्रकार के घोड़े-हाथी-रथ-पदाति आदि पदार्थ युक्त राज्य को प्राप्त करता है-ऐसे पार्श्वनाथ प्रभु रक्षा करो ।

“ जिसका नाम स्मरण करने से मंत्र-तंत्रादि की विधिप भी सिख होती है-ऐसे पार्श्वनाथ प्रभु रक्षा करो ” ।

“ जिसका नाम स्मरण करने से असाध्य विद्याएं भी साध्य हो सकती हैं-ऐसे प्रभु रक्षा करो ” ।

“ जिसके नाम स्मरण से, अनेक तपस्य, से प्राप्त होने वाली, अष्टसिद्धि प्राप्त होती है-ऐसे पार्श्वनाथ प्रभु रक्षा करो ” ।

“ जिसके ‘ ओं-ह्रीं-भ्रीं-अर्हं श्रीचितामणिपार्श्वनाथाय नमः इस प्रकार के मंत्र से सारा जगत् वश होजाता है-ऐसे पार्श्वनाथ प्रभु इस जगत् की रक्षा करो ” ।

इत्यादि प्रकार से स्वच्छ और निर्मल हृदय पूर्वक श्रीपार्श्वनाथ प्रभु की स्तवना करके इस प्रभु का नाम सूरिश्वर ने ‘ श्रीचितामणि पार्श्वनाथ ’ स्थापन किया । श्रीसंघ के आग्रह से सूरिजी ने चातुर्मास सिकंदरपुर में ही किया ।

इस सिकंदरपुर में एक ‘ लडुआ ’ नामक सुभावक रहता था, जो बड़ा बुद्धिमान और धनाढ्य था । इस महानुभाव ने अपने द्रव्य से श्रीशक्तिनाथ प्रभु का एक बिंब बनवाया और उत्सव के साथ भीसूरिश्वर के हाथ से प्रतिष्ठा करवाई । इस प्रतिष्ठा के समय श्रीनन्दिबिजय मुनीश्वर को “ वाचक ” पद दिया गया और विद्याविजयमुनि जी को “ परिहृत ” पद । अब सूरिजी की

इच्छा सूरिमंत्र की आराधना करने की हुई और इसी विचार से आपने लाटापल्ली (लाडोल) के प्रति विहार भी किया ।

लाडोल में आकर आपने छ विंगय (घृत-दुग्ध-दही-तेल-गुड़ और पक्वान्न) का त्याग किया । छट्ठ-अष्टमदि तपस्या करना आरंभ की । तथा पठन-पाठनादि का कार्य अपने शिष्यों को दे करके वचनों उच्चार करना बन्द करके ध्यानानुकूल वेश तथा शरीरावयवों को रक्ष करके आप सूरिमंत्रका स्मरण करते हुए ध्यानमें बैठ गए ।

संपूर्ण ध्यान में आकूट होते हुए जब तीन मास पूरे हो गए तब एक यक्ष वज्राञ्जली होकर, सूरिजी के सामने आ खड़ा हुआ । और कहने लगा 'हे प्रभो ! हे भगवन् ! आप पाण्डितवर्य श्रीविद्या-विजय जी को स्वपट्ट पर स्थापन करो । यह विद्वान् मुनि आपही के प्रतिबिम्ब रूप हैं । ' वस ! इतने ही शब्द कर वह अन्तर्ध्यान हो गया । इन वचनों को सुनते हुए सूरेश्वर बहुत प्रसन्न हुए । जब सूरिजी ध्यान में से बाहर निकले अर्थात् ध्यान से मुक्त हुए तब लोगों ने बड़ा उत्सव किया । इस सालका चातुर्मास आपने लाडोल में किया । इसके उपरान्त यहां से विहार करके पृथ्वी तलको पवित्र करते हुए आप इडर पधारे । वहां एक बड़ा गढ़ है, यहां पर आकर श्रीऋषभदेवादि प्रभु के, दर्शन करके सब मुनि गए कृतकृत्य हुए । यहां से आप तारंगाजी तीर्थ की यात्रा करने को पधारे । तारंगा में श्रीअजितनाथ प्रभुकी यात्रा करके फिर सौराष्ट्र देश में पधारे । सौराष्ट्र देश में आते ही आपने पहिले पहल तीर्थ-धिराज श्रीशत्रुञ्जय की यात्रा की । और यहां से 'ऊना' पधारे । ऊनामें जगद्गुरु श्रीहीरविजय सूरेश्वरकी पादुका की उपासना करके पुनः सिद्धाचल को (शत्रुञ्जय) पधारे । यात्रा करके खंभात के श्रीसिंध के अत्याग्रह से आप का खंभात आना हुआ ।

खंभात में आपने गंभीर वाणी से देशना देनी आरम्भ की । इस देशना में मुख्य विषय भगवत्प्रतिष्ठा-तीर्थ यात्रा-और बड़े बड़े उत्सवों से शासन प्रभावना ' आदि रक्खे थे । सूरिभ्वर के उपदेश से अति अद्धावान्—धनवान्—बुद्धिमान् ' भीमल्ल ' नामक भावक के मनमें यह विचार हुआ कि ' लक्ष्मीलता का यही फल है कि यह सुकृत में लगाई जाय । क्योंकि जिस समय इस संसार से हम चले जायेंगे, उस समय खाली हाथही जायेंगे । न तो भाई काम आवेगा, न पिता, न माता और न लक्ष्मी । लक्ष्मी वही सार्थक है जो इस हाथ से धर्म कार्यों में लगाई जायगी ' वस ! ' यही विचार करके ' भीमल्ल ' ने आचार्य पदवीका महोत्सव करना निश्चय किया ।

गुजरात—मारवाड़—मालवा आदि देशों में कुंकुम पत्रिकाएं भेजवा दी गई । इस महोत्सव के ऊपर अनेक देश के भावक इकट्ठे होने से यह नगर पञ्चरंगी पाघ से सुशोभित होने लगा ।

भीमल्ल भावक ने महोत्सव आरंभ किया । अपने यहां पर एक सुन्दर मण्डप की रचना की । शहर के समस्त राजमार्ग साफ करवाए । सुगन्धित जल से नगर में छिड़काव हो गया । घर घर में नए तोरण बांधे गए । घरकी दिवालें रंग बिरंग से सुशोभित की गई । वृक्षों के ऊपर ध्वजा—पताकाएं लजाई गई । देव—मन्दिर भी अत्युत्तम रीति से सजाए गए । देखते ही देखते में सम्पूर्ण नगर अमरापुरी की उपमा लायक बन गया ।

आचार्य पदवी के दिन ' भीमल्ल ' शेर अपने भ्रातृपुत्र शोभ-सम्भ को साथ में लेकर, पञ्चवर्ण के वस्त्र धारण करके अनेक प्रकार के आभूषणों से अलंकृत होकर श्रीसूरिजीके पास आए और इस तरह प्रार्थना करने लगे:-

“हे पूजपाद ! सूरि पदकी स्थापना का समब निकट आया है आप कृपा करके मेरे घरको पवित्र करिये ” ।

इसके पश्चात् तुरन्तही श्रीसूरीश्वर अनेक साधु-साध्वी-भावक-भाविका के वृन्द के साथ वहां पधारे जहां कि आचार्य पदवी देने के लिये मण्डप की रचना हुई थी । सं० १६५६ मिति वैशाख शुक्ल ४ सोमवार के दिन उत्तम नक्षत्र में भीविद्याविजय मुनीश्वर को ‘सूरि’ पद अर्पण किया गया । इस नए सूरिजी का नाम ‘भीविजयदेवसूरि’ रक्खा गया ।

‘भीमल्ल’ नामक भावकने इस समय अभूतपूर्व दान किया । वाद्यादि सामग्रियों की तो सीमाही नहीं थी । बाहर से आप हुए अतिथियों को उत्तमोत्तम भोजन देकर स्वामिवात्सल्य किया गया । इस उत्सव के समाप्त होने के भीतरही भीसंघ के आग्रह से भी-सूरीश्वर ने भीमेघविजयमुनि जी को उपाध्याय पद दिया । इसके बाद थोड़ेही दिनों में ‘कीका’ नामक ठकुर के यहां भीप्रभुप्रतिमा की प्रतिष्ठा की और उसी समय विजयरज मुनीश्वर को भी उपाध्याय पद दिया गया । इस तरह ‘भीमल्ल’ और ‘कीका’ ठकुर ने समस्त संघ को संतुष्ट किया ।

इसी शहर में चातुर्मास पूर्णकर सूरिजी फिर अणहिलपुर पाटन पधारे । इस नगर में चातुर्मासान्त में भीविजयसेनसूरि की इच्छा भीविजयदेवसूरिजी को गच्छ की समस्त आज्ञा देने की हुई । इस कार्य के निमित्त महान् परीक्षक पं० सहस्रवीर नामक श्रावक ने एक बड़ा उत्सव किया । इस उत्सव पूर्वक सं० १६५७ मिति पौष वदी ६ के दिन उत्तम मुहूर्त में भीविजयदेवसूरीश्वर को संपूर्ण सिद्धान्त संबन्धी वाचना देने की तथा तपगच्छ का आधिप-

स्वात्मिक आश्वा दी गई । इतनाही नहीं बल्कि उस आश्वा रूपी नगरी के किल्लेभूत उत्तम सुरिमंत्र भी अर्पण किया गया ।

अब अणहिलपुर पाटण से विहार करके सूरिजी भीसंखेश्वर जी पधारे । यहां पर भीसंखेश्वरजी पार्श्वनाथ की यात्रा की और नयविजय नामक मुनि को लुंकाकमत त्याग करा कर गुरु शिष्य का आभयण करते हुए उपाध्याय पद अर्पण किया । इस समय अनेक घोड़े-हाथी-उंट-पैदल वगैरह आडंबर के साथ मारवाड़ देश से महान् संघपति हेमराज, भीसंघकी साथ में शत्रुञ्जय तीर्थकी यात्रा को जाते हुए भीसंखेश्वर में आकर बड़े उत्सव के साथ मुनीश्वरों का दर्शन करने को थोड़े रोज ठहर गए ।

यहां से विहार करके ग्रामानुग्राम बिचरते हुए, भव्य प्राणिओं को वीर परमात्माकी वाणी का लाभ देते हुए सूरिश्वरजी अहमदाबाद पधारे ।



बारहवा प्रकरण ।

(अनेक प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा । तेजपाल नामक श्रावक का बड़ा भारी संघ निकालना । रामसैन्य तीर्थ की यात्रा ।

मेघराज मुनिका लुंकाकमत त्याग करना । तीर्था-

धिराजकी यात्रा और श्रीविजयदेवसूरिजी

का पृथक् विचरना इत्यादि)

अहमदाबाद के भावकों ने भीसूरिश्वरजी की वाणीसे अपूर्व लाभ उठाया । इधर प्रतिष्ठा पर प्रतिष्ठा होने लगी । एक पुण्यपाल नामक श्रावक ने ५१ अंगुल प्रमाण की श्रीश्रीतलनाथ स्वामी की प्रतिमा की, तथा उनके भाइ ठाकर ने ७५ अंगुल प्रमाण की

श्रीसंभवनाथ स्वामी की प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवाई । इसी के साथ २ एक नाकर नामक श्रावक ने भी ५१ अंगुल प्रमाण की श्रीसंभवनाथ स्वामी की प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवाई । इस श्रावक पर स्तम्भतीर्थ के रईस वजीआ (अजलाल) नामक श्रावक ने (जिसने की पहिले भी श्रीपार्श्वनाथ प्रभु की प्रतिष्ठा करवाई थी) एक पार्श्वनाथ प्रभु की तिरसठ अंगुल प्रमाण की मूर्ति बनवा कर प्रतिष्ठा करवाई ।

इस पार्श्वनाथप्रभु की महिमा अपूर्वही होने लगी । जो व्यक्ति स्वर्ग और मोक्ष को देने वाले इस पार्श्वनाथप्रभु के नाम-मंत्र का सर्वदा अपने अन्तःकरण में स्मरण करने लगा, उसको आधि—व्याधि—विरोध—समुद्रभय—भूत—पिशाच—व्यन्तर—चोर आदि सभी प्रकार के भय नष्ट होने लगे । बात भी ठीक है । ‘ श्रीपार्श्वनाथाय नमः ’ इस मंत्रमें ही इस प्रकार की शक्ति स्थापित है । पूर्वाचार्योंने भी यही कहा है कि:—

आधिव्याधिविरोधिवारिधियुधि व्यालस्फटालोरगे ।

भूतप्रेतमलिम्लुचादिषु भयं तस्येह नो जायते ॥

नित्यं चेतसि ‘ पार्श्वनाथ ’ इति हि स्वर्गापवर्गप्रदं ।

सन्मन्त्रं चतुरक्षरं प्रतिकलं यः पाठसिद्धं पठेत् ॥१॥

इसके सिवाय चातुर्मास समाप्त होने के पश्चात् ‘ सिंघजी ’ नामक भेष्टीने अजितनाथ प्रभुकी प्रतिमा स्थापित करवाई। ‘ श्रीपाल ’ नामक जौहरीने ६७ अंगुल प्रमाण की पार्श्वनाथकी प्रतिमा प्रतिष्ठित करवाई । जिसका नाम ‘ जगद्वल्लभ ’ रक्खा । एवं स्तम्भ तीर्थ के रईस तेजपाल नामक श्रावक ने ६६ अंगुल प्रमाण की आदीश्वर भगवान् की प्रतिमा स्थापित करवाई । पट्टण नगर निवासी तेजपाल सोनीने ४७ अंगुल प्रमाण की श्रीसुपार्श्वनाथ प्रभुकी प्रतिमा

निर्मित करवाई । इन ऊपर कहीं प्रतिमाओं और अन्य अनेक प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा भीविजयसेन सूरेश्वर ने अपने हाथ से की ।

इस साल में भीसूरेश्वर के उपदेश से भीतेजपाल सोनी ने संघपति होकरके तीर्थयात्रा करने को संघ निकाला । हजारों मनुष्य को साथ लेकर श्रीगुरु बाबा प्राप्त कर संघपति यात्रा के लिये चले । मार्ग में जहां २ श्रावक का घर आता था, वहां २ प्रत्येक घर में एक २ 'महिमुन्दिका' देते थे । पहिले पहल इस संघ ने तीर्थाधिराज श्रीशङ्खजय तीर्थ की यात्रा की । इसके पश्चात् सीरोही—राणपुर-नारदपुरी-वरकाणा आदि तीर्थोंकी यात्रा करके मारवाड में स्थित प्रायः समस्त तीर्थों की यात्रा करके सारासंघ अपने देश में आया । अपने नगर आने के बाद संघपतिने श्रावक के प्रत्येक घरमें एक २ लड्डू और रुपये युक्त एक २ घाल की प्रभावना की । यह सब प्रभाव भीविजयसेनसूरिजी का ही था । क्योंकि तीर्थ यात्रा—स्वामिभाईकी भाक्ति आदि शासन प्रभावना के कार्य करने से कैसे २ फलकी प्राप्ति होती है ? यह सब गुरु महाराज के उपदेश से भेष्टी ने जाना था ।

भीविजयसेनसूरि जी के अहमदाबाद में रहने से लोगों को धर्मोपदेश का अपूर्व लाभ हुआ । लोगों ने धर्मकार्यों में द्रव्य व्यय करने में जरा भी संकोच न किया । इस उदार चरित का पूरा वर्णन करना कठिन है । सं० १६५६ के एकही चातुर्मास में श्रावकों ने ' एक लक्ष ' महि मुन्दिका व्यय किए ।

इसके बाद सूरेश्वर की इच्छा राधनपुर जाने की हुई । यहां से चलकर पहिले श्रीसंजेश्वर पार्श्वनाथ की यात्रा करके सूरेश्वर ने राधनपुर के समीपभूमि को प्राप्त किया । नगर के भावकों ने बड़े उत्साह के साथ सूरिजी का सामेला किया ।

यहां के लोगों को भी धर्मदेशना का अपूर्व लाभ मिला । सूरि जी के समुदाय की, ज्ञान-ध्यान-तप-संयमादि क्रियाओं का कुछ ऐसा प्रभाव पड़ता था कि उनको देखते ही लोगों को धर्मकी ओर अभिरुचि हो जाती थी । आपके सत्संग से उपधान मातारोपण—चतुर्थव्रत-बारहव्रत आदि अनेक प्रकार के नियम श्रावकों ने ग्रहण किए थे । इसी तरह सारा चातुर्मास सूरेश्वर जी के वाग्विलास सेही समाप्त हुआ ।

कुछ काल पहिले श्रीहीराविजयसूरेश्वर के समय में (सम्भवतः १६२६ के साल में) रामसैन्य नामक नगर की भूमि में से एक मनोहर श्रीऋषभदेव भगवान् की प्रतिमा निकली हुई थी । यहां के श्रावकों ने इस प्रतिमा को इसी स्थान में एक भूमिगृह में स्थापन की थी । इस बात की प्रसिद्धि जगत में पहले ही से फैल चुकी थी ।

इस तीर्थ की यात्रा करने के लिये राधनपुर का भीसंघ भीसूरेश्वर के साथ में चला । क्रमशः चलते हुए बहुत दिन व्यतीत होनेपर इस तीर्थ में वह संघ आपहुंचा । श्रीऋषभदेव भगवान् के दर्शन करके सब लोग कृतकृत्य हो गए । भीसंघ ने भी बहुत द्रव्य का व्यय करके स्थावर-जंगम तीर्थ की अच्छी तरह भक्ति की । यहां की यात्रा करने से लोगों को अपूर्व भाव उत्पन्न हुए । फिर लौट करके सब लोग राधपुर आए । सूरेश्वर आदि मुनिवर भी उस समय वहां पधारे ।

राधनपुर में सूरेश्वर के आने के बाद अनेक शुभ कार्य हुए । जिनमें ' बासणजोट ' नामक भावक का बड़े उत्साह के साथ एक नए मंदिर की प्रतिष्ठा कराना, एक मुख्य कार्य था । कुछ दिन यहांपर ठहर करके फिर आप ' बड़ली ' नगर में गए । यहां श्री

विजयदानसूरि और श्रीहीरविजयसूरि के दो कीर्ति स्तंभ बड़े ही आश्चर्यकारी थे । इसकीर्ति स्तम्भके आगे प्रत्येक भाद्रशुक्ल एकादशी के दिन घटपल्ली और पत्तन नगर के लोग इकट्ठे होकरके बड़ा उत्सव करते हैं । वहां आकरके विजयसेनसूरि ने इस कीर्ति स्तम्भ के सामने गुरुवर्यों की स्तवना की । यहां से बिहार करके पत्तन नगर के श्रावकों के आग्रह से आप पत्तन पधारे ।

दूसरी ओर, इस पत्तननगर में विराजते हुए श्रीविजयदेवसूरि के वाग्बिलास से उत्साहित होकर लुंकामत का स्वामी मुनि मेघराज (जो पहिले पहल लुंकामत को त्याग करने वाले मेघजी ऋषि का प्रशिष्य था) के मनमें अपने मतकों त्याग करने की इच्छा हुई । वह श्री-विजयसेनसूरिजी के चरण कमल में आया । विजयसेनसूरिजी की देशना सुनने से इन मद्धानुभावकी भद्धा और भी पक्की हुई । इसके बाद मुनि मेघराज ने लुंका मत को त्याग किया और श्रीतपागच्छरूप वृद्ध की शीतल छाया में रहने लगा । बड़े समारोह के साथ तपागच्छ में यह दीक्षित किए गये ।

एक दिन इस पत्तननगर के एक ' कुमरगिरि ' नामक पुर के भा-
वकवर्ग ने अतीव आग्रहपूर्वक विनति की—' हेकृपालु महाराज ! आप के चरणकमल से हमारा छोटा पुर पवित्र होना चाहिये ।' लाभ का कारण देख करके मुनिवरों ने आषाढ़ शुक्ल प्रतिपदा के दिन इस पुर में प्रवेश किया । इस पुर में चातुर्मास करने से यहाँ के लोगों को धर्म कृत्य करने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ । पत्तननगर के लोग भी इस उपदेश का लाभ सर्वदा ले सकते थे ।

चातुर्मास समाप्त होने पर श्रीसूरेश्वरजी श्रीसंखेश्वर पार्श्वनाथ की यात्रा को पधारे । पुनः श्रीसंघ के आग्रह से आपका पत्तननगर

आना हुआ । यहाँ पर फाल्गुण चातुर्मास रह करके आपने स्तम्भ-
तीर्थ जाने के लिये प्रयाण किया ।

इस प्रकार पृथ्वी तलको पावन करते हुए चाणसमा-राजनगर-
आदि की यात्रा करते हुए आपने स्तम्भतीर्थ में प्रवेश किया । आपके
उपदेश से यहाँ के लोगों ने भी प्रतिष्ठादि बहुत से कार्य किये । आ-
वकों के आग्रह से चातुर्मास की स्थिति सूरिजी ने यहाँही की । चा-
तुर्मास व्यतीत होने के बाद आपने अकबरपुर नामक शाखापुर में आ-
कर चातुर्मास किया । तदनन्तर बिहार करके आप गन्धारपुर में
पधारे ।

गन्धार बन्दर में भी आपने बहुतसी प्रतिष्ठाएं की, और उपदेश
द्वारा लोगों को लाभ प्रदान किया । यहाँ से आप बिहार करके भृगु-
कच्छ-रानेर आदि होते हुए तापीनदी को नावसे उल्लंघन करके सु-
रत पधारे । यहाँपर भी प्रतिष्ठाएं की और चातुर्मास की स्थिति स-
म्पन्न करके बिहार किया । स्तम्भ तीर्थ आदि स्थानों में होते हुए
भीविजयदेवसूरि के सहित आप भीसिद्धाचल जी पधारे । वहाँपर
उस समय स्तम्भ तीर्थ-राजनगर-पत्तन-नवीन नगर-द्वीप बन्दिर
आदि नगरों से संघ आप हुए थे । इन लोगों को भी सूरिजी के उप-
देश से बहुत लाभ मिला । यहाँ से भीविजयसेनसूरि जी ने द्वीप ब-
न्दर के लोगों के आग्रह से द्वीप बन्दर की ओर प्रयाण किया और गु-
जरात के लोगों के आग्रह से भीविजयदेवसूरि को गुजरात में विचरने
की आज्ञा दी ।

जिस प्रकार कस्तूरी की सुगन्धि फैलाने की कोई आवश्यकता
नहीं पड़ती । वह आपही से फैलजाती है । उसी प्रकार सूरेश्वर जी
की यश-कीर्ति चारों ओर फैलगई । सौराष्ट्र देशमें विचरने से सौरा-
ष्ट्रदेश के लोग अपने २ ग्रामों में लेजाने के लिये नित्य प्रार्थना करते

ही रहते थे । सुरिजी का आना द्वीपबन्दर के पास उन्नत नगर में हुआ । उसी स्थानपर परम पूज्य-प्रातःस्मरणीय गुरुवर्य भीहीरवि-जयसुरिजी का देहान्त हुआ था । वहाँ आपने सबके प्रथम आपने गुरुवर्य की पाहुका के दर्शन किये । और उसके बाद फिर उन्नत नगर में प्रवेश किया ।

द्वीपबन्दर से 'मेघजी' नामक एक व्यवहारी और 'लाडकी' नामकी उसकी शीलवती भार्या, यह दोनों उन्नत नगर में सुरिजी के दर्शनार्थ आए । वहाँ आकर उन्होंने भीसुरीश्वर के हाथ से प्रतिष्ठा करवाई । यहाँपर भी नवीन प्रतिष्ठाओं की धूम मच गई । एक 'अमृता' नामकी भाविका ने प्रतिष्ठा करवाई । दूसरी द्वीप मन्दिर निवासी 'कालीदास' नामक भावक ने भी करवाई ।

असंघ के आग्रह से चातुर्मास आपने यहाँ ही किया । चातुर्मास पूर्ण होने के बाद आप 'देवप्रत्न' पधारे । इस नगर में अमरदत्त, विष्णु और लालजी नामक तीन बड़े धनिक रहते थे । इन तीनों ने बड़े समारोह के साथ भीसुरीश्वर के हाथ से तीन प्रतिष्ठाएं करवाई । यहाँ से बिहार करके आप भीदेवकुल पाटक(देलवाड़ा) पधारे । यहाँ भी 'हीरजी' नामक भावक के घर में एक प्रतिष्ठा की और दूसरी 'शोभा' नामकी भाविका के घर में ।



तेरहवां प्रकरण ।

(कपितान—कलास—पादरी युक्त फरंगी समुदाय की प्रार्थना ।

श्रीनन्दिविजयका द्वीपमन्दिर जाना । गिरनारजी की यात्रा ।

स्वयं श्रीसुरीश्वर का द्वीपमन्दिर पधारना । संखेश्वर

की यात्रा । ग्रामानुग्राम विचरना और

अन्तिम उपसंहार) ।

जिस समय में भी विजयसेनसुरीश्वरजी देवकुल पाटक में बिराजते थे । उस समय में द्वीप बन्दर के फिरंगी लोग, अपने कपतान (अधिकारी विशेष) कलास (अमात्य विशेष) पादरी (धर्म गुरु) इत्यादि के साथ भीसुरिजी के पास आकर प्रार्थना करने लगे:—

“हे गुरुत्तम ! हे निर्मल हृदय ! आप द्वीप मन्दिर पधार कर हम जैसे अन्धकार में पड़े हुए लोगों का कुछ उद्धार करिए । कदाचित आप स्वयं न आ सकें तो किसी एक उत्तम चेले को भेज करके हमारे हृद्यों को शान्त करिये । ”

इस प्रकार फिरंगी लोगों के अत्याग्रह से सुरीश्वर ने अपने नन्दिविजय नामक चतुर्भुज मुनिको द्वीप बन्दर भेजा । श्रीनन्दिविजयकी कळा कौशल्य और चमत्कारिक विद्याओं से लोग अत्यन्त प्रसन्न हुए । लोगों ने श्रीनन्दिविजय मुनीश्वर का बहुतही सत्कार किया । आपने यहां पर तीन रोज ठहर करके व्याख्यान द्वारा जीवादि नव तत्त्वों का उपदेश करके लोगों के अन्तःकरणों में बहुत ही प्रभाव डाला । भीखेंध के साथ तीन दिन रह कर आप पुनः गुरु महाराज के पास आगए । एक दिन आपने श्रीनेमनाथ प्रभु

की यात्रा के लिये विहार किया । साथ में द्वीप बन्दर का भीसंघ भी चला । बहुत दिन व्यतीत होने पर आप गिरनार जी पहुँचे । इस समय गिरनार में 'खुरम' राज्य करता था । यह राजा स्वभाव ही के साधुओं के प्रति बड़ा क्रूर स्वभाव रखता था । किन्तु भीविजयसेनसूरिजी के तपस्तेज से वह भी शान्त हो गया । कहाँ तक कहा जाय ? । राजा ने सूरेश्वर का बड़ा ही स्तुकार किया । एक दिन भीसंघ के साथ में सब लोग गिरि पर बड़े और भीसिखराज जयसिंह के महामंत्री 'सज्जन भेष्टी' द्वारा निर्माणा किये हुए 'पृथिवी जय' नामक प्रासाद में बिराजमान भी नेमीनाथ की मनोहर प्रतिमा के दर्शन करके सब लोग कृतकृत्य हुए । अनेक प्रकार से मुनिवरों ने भाव पूजा और संघने द्रव्यादि से पूजा की । वहाँ पर कुछ दिन ठहर कर सब लोग देवपत्तन आए । यहाँ से द्वीप बन्दर का संघ गुरुबंदन करके स्वस्थान पर चला गया । देवपत्तनमें सूरेश्वरने दो चातुर्मास करके बड़े उत्सव के साथ दो प्रतिष्ठार्पण की । इसके उपरान्त यहाँ से विहार करके देतवाड़े में पधारे । यहाँ आनेपर वह फिरंगी लोग ओ भीनन्दिविजय जी को प्रार्थना करके पहले अपने द्वीप बन्दर में ले गये थे उन्होंने यह विचार किया—'भीगुरु महाराज वर्तमान देवकुल पाटक में पधारे हुए हैं । तथा जिन के प्रभावसे यहाँ का संघ यात्रा के लिये गत वर्ष में गया था,—वह भी सकुशल पहुँच गया है । अत एव उस उपकारी महात्मा का पुनः दर्शन करना चाहिये ।'

इस प्रकार विचार करके फिरंगी लोग देवकुलपाटक में आए और भीगुरु महाराज से प्रार्थना करने लगे:—

“ हे गुरु ! इस जगत् में हितकारी कार्यों के करने में दक्ष आप ही हैं । आपही आषाढ़ के मेघ की तरह इस जगत्के वृत्तल

हैं। अतएव-कृपया हमारे साम्राज्य में स्थित द्वीप बन्दर में आप सभासि। और हमारे मनोस्थों को पूर्ण करिये।”

इस प्रकार की अत्याग्रहपूर्ण अनिति को सुन कर सूरिजी ने निश्चय किया कि—‘फिरंगी लोगों का इतना आग्रह है। द्वीपबन्दिर के भीसंध का आग्रह तो पहिले से ही है। अतएव जहां पर जाना उचित है। वहां जाने से धर्म-धनका लाभ तो अपने को होगा। और अन्य जीवों को भी बोधि प्राप्त रूप लाभ होगा। फिर इस बन्दर में अभीतक किसी आचार्य का जाना नहीं हुआ है इत्यादि बातें सोच करके भीविजयसेनसूरि द्वीप बन्दिर पधारे।

सार्ग में द्वीपाधिपति फिरंगी ने ‘मचुमा’ नामक बाहन को भेजा और उसमें बैठ करके आप पार उतरे। गुरु महाराज के पुर प्रवेश के समय फिरंगी लोगों ने तथा भीसंध ने बड़े उत्साह के साथ अवर्णनीय महोत्सव किया। निव्य व्याख्यान वाणी होने लगी। सब लोग सूरिेश्वर के उपदेश रुपी समुत् से अपनी तृषाको शान्त करने लगे। एक दिन फिरंगी लोगों की मुख्य कर्मा में बड़ी जोर और के सूरिेश्वर ने सत्य धर्म का प्रति प्रदर्शन किया। अर्थात् इन्होंने यह बात सिद्ध करके दिखाया कि—यदि कोई भी मोक्षमार्ग को साधन करने वाला धर्म है तो वह जैन धर्म ही है। लोगों के अन्तःकरण में इस बातका निश्चय हो गया। समस्त लोग आश्चर्य-युक्त होकर यह कहने लगे—“अहा! सूरिेश्वर जी का कैसा प्रभाव है कि फिरंगी जैसे आचार विहीन लोग भी इसके उपदेश से संतुष्ट होमय। महात्माओं के चातुर्य की क्या बात है?” कुछ दिन रहकर देवकुल पाटक में आकर सूरिेश्वर ने चातुर्मास किया।

चातुर्मास होने के पश्चात् ‘नवानगर’ के कितनेही अधिकारी धर्म के अत्याग्रह से, आप ‘माणवाड’ होते हुए नवानगर पधारे।

सुरीश्वर के दर्शन करने के लिये 'जाम' राजा भी कभी न आया करता था। चातुर्मास यहां ही किया।

तदन्तर अनेक नगरों के भीलंध के साथ सुरिजी भीसंकेतकर पार्श्वमाथ की यात्रा करने को पधारे। यहां की यात्रा करके, आप अहमदाबाद पधारे। भीविजयदेवसुरि जी ने भी आप के साथ ही अहमदाबाद में चातुर्मास किया।

इस वर्ष में अहमदाबाद में बहुत भारी यह कार्य हुआ कि यहां की जाति में एक बारह वर्ष से विरोध चलता आता था। जो कि किसी से भी नष्ट नहीं हुआ था। वह विरोधभी सुरीश्वरकी उपदेश वाणी से नष्ट हुआ और सब लोगों में प्रेक्ष्य होगया।

प्रिय पाठक! सर्वदा उपदेश का प्रभाव तबही होता है कि जब उपदेशक स्वयं उस तरह का आचरण करता हो। यदि स्वयं उपदेश करने वाला अशान्तिका उत्पादक है, तो उनके उपदेश का प्रभाव लोगोंपर जरा भी नहीं हो सकता है। इसी लिये उपदेशकों को चाहिये कि वह प्रथम स्वयं शान्ति-प्रिय बने।

चातुर्मास उत्तरमे के बाद सुरीश्वर ने दो प्रतिष्ठाप माघ मास में और दो वैशाख में करवाई। फिर दोनों सुरीश्वर पृथकी तलको पवित्र करने लगे।

उपसंहार ।

पवित्र प्रातःस्मरणीय जगदुपकारी महात्माओं की यह संक्षिप्त जीवनी " श्रीविजयप्रशस्ति काव्य " के आधारपर लिखी गई है। इसकी समाप्ति के प्रथम इतना कह देना परमावश्यक है कि श्री-विजयसेनसुरीश्वर के राज्य में प्रधान पट्टधर बिजयदेवसुरि थे। आप शासन भारको वहन करने में अत्यन्त निपुण थे। इनके अतिरिक्त आठ " उपाध्याय " पदधारी, और सैकड़ों मुनि " पांडित "

पदवी धारक थे। इस पवित्र समूह में अनेक व्याकरण शास्त्र के पार-
गामी, कितने तर्क शास्त्र में बृहत्पति तुल्य थे । और कितनेही आ-
शुक्वि तथा व्याख्यान देने में वाचस्पति हो रहे थे । गणधर-श्रुत
केवलीकृतसूत्र, अङ्गोपाङ्गादिमें तथा बहुत से गणितशास्त्र, ज्योतिष,
साहित्य, छन्दानुशासन, ऋगानुशासन, धर्मशास्त्र आदि सब विषयों
के जानने वाले जैकड़ों साधु भीसूरिजी महाराज के साम्राज्य में थे ।

भीसूरिजी महाराज के उपदेश से भीशत्रुञ्जय-भीतारंगा-भी-
विद्यानगर-भीराणपुर-भीआरासणपुर-पत्तननगर में पंचासर पा-
श्वनाथ-भीनारंगपुरीयपार्श्वनाथादि के तीर्थ का इत्यादि बहुत से
तीर्थोद्धार हुए । प्रतिष्ठाएं तो बहुतसी जीवन चरित्र में दिखाई
गई हैं । भीसंज्ञेश्वर ग्राम में भीपार्श्वनाथ का शिखरबंध मन्दिर
का निर्माण भी सूरेश्वर ने करवाया था ।

नगर २ में स्थान २ में राजा महाराजाओं के अतुच्छ महोत्सवों
से पूजित भीहीरविजयसूरि और भाविजयसेनसूरिके पुण्य प्रभावसे
इस चरित्र को पढ़ने वाले पाठकों को उत्तमोत्तम गुणों की प्राप्ति
हो, यह इच्छा करता हुआ इस पवित्र चरित्र को यहांही स-
माप्त करता है ।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

—*—

सूचना

“भीहीरविजयसूरि, अकबर बादशाह को धर्मोपदेश दे रहे हैं,”
इस भाष की फोटु जिसको चाहिए, वह ‘श्वेताम्बर ओसवाल जैन
लायब्रेरी, चौक लखनऊ’ इस पतेसे मंगवाते । केबीनइट (८)
फूलसार (॥)

जैन-शासन ।

(पाक्षिक पत्र)

यह पत्र हरपूर्णिमा तथा अमावास्या को प्रकट होता है । इस पत्र में ऐतिहासिक, नैतिक एवं धार्मिक विषय के लेख प्रकाशित हुआ करते हैं । गुजराती के साथ हिन्दी भाषा में भी प्रायः लेख रहते हैं । वार्षिक २) ग्राहक होने वाले को चाहिए कि अपना, नाम, गांव इत्यादि पूरा पता साफ अक्षरों में लिख भेजें ।

श्रीयशोविजयजैनग्रन्थमाला

(संस्कृत मासिक पुस्तक)

श्रीयशोविजय जैनग्रन्थमाला मासिक में एकसौ पृष्ठ संस्कृत और प्राकृत के निकाले जाते हैं । जिसमें न्याय, कोश तथा महाकाव्य के ग्रन्थ कमशः प्रकाशित होते हैं । डाक महुसुक्त के साथ वार्षिक ८) प्रथम से लेने में आते हैं । नमूना का अंक किसी को भेजने में नहीं आता है ।

शास्त्रविशारद जैनाचार्य-श्रीविजयधर्मसूरिजी कृत

१. जैनतत्त्वदिग्दर्शन	(हिन्दी भाषा)	०-२-०
२. जैनशिक्षादिग्दर्शन	"	०-२-०
३. "	(गुजराती)	०-२-०
४. पुरुषार्थदिग्दर्शन	(हिन्दी भाषा)	०-४-०
५. आत्मोन्नतिदिग्दर्शन	(गुजराती)	०-०-६
६. अहिंसादिग्दर्शन-	(हिन्दी)	०-४-०
७. "	(बंगला)	०-४-०
विजयप्रशस्तिसार	(हिन्दी)	०-६-०

पता:—शाह-हर्षचन्द्र भूराभाई ।

अंग्रेजी कोठी-बनारस-सिटी,